प्रकाशकीय—

वेद, भगवान् की कल्याणी वाणी है। वैदिक सिद्धान्त अपने आप में सत्य, सनातन और शाश्वत हैं। बीच के कुछ समय में मानव इस सचाई को भूलकर मत-मतान्तरों की पगदण्डियों में भटक गया और सत्य सनातन सिद्धान्तों का स्थान मनघड़न्त विनाशकारी मान्यताओं ने ले लिया। एक ईश्वर की जगह अनेकों कल्पित ईश्वर, उनके नाम पर अनेकों सम्प्रदाय, अनेकों साम्प्रदायिक चिन्ह (तिलक छापे) अनेकों अवतार, अनेकों पूजा-पद्धतियाँ, अनेकों मत पन्थ, अनेकों धर्मगुरु, अनेकों गुरु मन्त्र और अनेकों अभिवादन—अनेकता और आपसी फूट के इस महासागर में प्रभु की श्रेष्ठतम कृति–यह मानवसमाज और मुख्यतया संसार मुकुट यह महान् भारत राष्ट्र आकण्ठ डूब गया। लगता था जैसे कि असत्य के प्रलयकारी बादलों से सत्य का सूर्य सदैव के लिए छिप गया हो। पर भगवान बड़े दयालु हैं। युगों के बाद अज्ञान तिमिर को चीरते हुए ऋषि दयानन्द दिवाकर का उदय हुआ। एक बार पुनः ज्ञानालोक की किरणों से धरती थिरक उठी और अज्ञान अन्धकार किसी कोने में जा छिपा। उस ज्योति-पुञ्ज से प्रकाश लेकर न जाने कितने मानव प्राण ज्योतित होकर धन्य जीवन हो गये। स्वर्गीय पं० सिद्धगोपाल जी 'कविरत्न' उन्हीं पुरुष-पुङ्गवों में से एक थे।

वैदिक सिद्धान्तों की सत्य ज्योति पाकर किस प्रकार वे साधारण स्थिति से उठकर आर्यसमाज के मूर्धन्य उपदेशकों की श्रेणी को प्राप्त हुए, इसकी एक शिक्षाप्रद प्रेरक कहानी है। वैदिक सिद्धान्तों पर उनके सरस एवं ओजस्वी प्रवचन तथा हृदयग्राही कवितायें किसे मन्त्रमुग्ध नहीं कर देते थे। अपने प्रचार काल में उन्होंने अनुभव किया कि सर्व साधारण के लिए वैदिक सिद्धान्तों और आर्यसमाज के दृष्टिकोण को समझने के लिए प्रारम्भिक सरल पुस्तक का अभाव है। 'दो बहिनों की बातें' इसी सुदीर्घ चिन्तन एवं मन्थन का परिणाम है।

'बहिनों की बातें' निःसन्देह गागर में सागर है। ऐसे छोटे से ग्रन्थ में इतने थोड़े शब्दों में और इतनी रोचक शैली में प्रायः सभी वैदिक सिद्धान्तों का ऐसा सुस्पष्ट विवेचन स्वनाम धन्य पं० सिद्धगोपाल जी जैसे मेधावी और सिद्ध पुरुष का ही काम थां। सत्य के जिज्ञासुओं ने इसें बड़े चाव से अपनाया और मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। हमारे 'तपोभूमि' व्यवस्थापक स्वर्गीय 'शुभैषी' जी वानप्रस्थी के शब्दों में तो यह छोटा 'सत्यार्थप्रकाश' है। सत्यार्थप्रकाश के १४ समुल्लासों के अनुक्रम में ही मानो इसमें १४ विषय हैं। उनका यह बहुत पुराना सङ्कल्प रहा है कि इस ग्रन्थ-रत्न को गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचाया जावे। इसी विचार से अनुप्राणित हो आपने ग्राम गीतों के यशस्वी प्रणेता श्री पं० रूपराम जी 'रूप वियोगी' (सलेमपुर) को प्रेरित किया। श्री 'रूप वियोगी' जी ने अथक परिश्रम और निष्ठा के साथ इस ग्रन्थ रत्न को 'दो बहिनों की बातें' नाम से पद्यबद्ध किया। जनवरी' ६१ में इसे हम अपने प्रेमी पाठकों को दे चुके हैं। पुस्तक रूप में भी इसे प्रकाशित किया गया जिसका सर्वत्र अत्यधिक समादर हुआ। किन्तु पद्य में पुस्तक का कलेवर १२५ पृष्ठों के स्थान पर लगभग २०० पृष्ठों का हो गया। फलतः मूल्य कम नहीं किया जा सका। ईश-कृपा से अनेक वर्षों के बाद अब कहीं यह दिव्य साध किन्हीं अंशों में पूर्ण हो रही है जब कि हम इस ग्रन्थ रत्न का यह प्रचार संस्करण निकाल रहे हैं। 'दो मित्रों की बातें' इसी ग्रन्थ का रूपान्तर है।

वैदिक सिद्धान्तों की व्याप्ति और साचार प्रचार द्वारा ही भारत और संसार के कष्ट दूर होंगे, इसी विश्वास के साथ यह पुण्य कृति सेवार्पित है।

हमारा विश्वास है कि सम्पूर्ण आर्य जनता एक-एक व्यक्ति के हाथों में इस ग्रन्थ को पहुँचा कर कर्त्तव्य पालन करेगी। इस आशा और विश्वास के साथ,

हम हैं आपके—

प्रहलाद कुमार आर्य, (हिण्डौन)—आचार्य प्रेमभिक्षु

लेखक का संक्षिप्त परिचय

पं० सिद्धगोपाल जी कविरत्न, आर्यसमाज के उन सितारों में से थे जो अपनी पूर्णज्योति और आभा के साथ चमकते हैं और देखते ही देखते अनन्त में विलीन हो जाते हैं। यद्यपि सिद्धगोपाल जी का कार्य-काल बहुत छोटा रहा तथापि वह बहुत शानदार रहा और उसकी उज्वल रश्मियाँ चिर काल पर्यन्त प्रकाश फैलाती रहेंगी। वे लोगों के देखते ही देखते कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए, यश के सोपानो पर चढ़े और उसकी ऊँची से ऊँची चोटी पर पहुँचे। किसे ज्ञात था कि एक अँग्रेज महिला की रेल्वे की सिग्रेट की दूकान का यह विक्रेता किसी दिन आर्यसमाज का एक यशस्वी उपदेशक बनेगा? कहना पड़ेगा पंडितजी बड़े भाग्यशाली थे। आर्यसमाज के सम्पर्क से उनका और उनके सम्पर्क से आर्यसमाज का गौरव बढ़ा। निःसंदेह इनके छोटे से जीवन से हमारे नवयुवकों को उत्साह और प्रेरणा मिलती रहेगी।

पं० सिद्धगोपाल जी संयुक्त प्रान्त के इटावा जिले के अजीतमल ग्राम के निवासी थे। यह ग्राम आर्यसामाजिक प्रभाव और प्रगतियों के लिये एक अच्छा महत्व रखता है। इनके माता-पिता इनके बचपन में ही इस लोक से विदा हो चुके थे। इनका पालन-पोषण हाथरस जंकशन पर रहने वाले एक वैद्य महानुभाव ने किया जिन्हें वे पितावत् मानते रहे। उनकी वे तन मन धन से यथेष्ट सेवा करते रहे। उस परिवार के सारे सज्जनों और देवियों (मुरारीलाल, पूरनमल, अशरफी–लाल श्री रामेश्वरप्रसाद तथा प्रेमवती और इनकी माता आदि) को व विशेष आत्मीय समझते थे। अपने सहोदर भ्राता श्री लल्लूमल जी के प्रति भी आपका असीम अनुराग और स्नेह भाव था।

शहादरा से देहली आते जाते प्रायः प्रतिदिन रेल्वे स्टेशन पर पं० जी को देखने का हमें अवसर प्राप्त होता था। हम उनको न जानते थे परन्तु वे हर बार देखकर हमारा अभिनन्दन करते। इस प्रकार

के अनेक अवसर व्यतीत हो जाने पर एक दिन हम उनके पास गये और उनका परिचय प्राप्त किया। बातचीत में कहने लगे, 'आप बहुत शीघ्र मेरी जीवन धारा को बदला पायेंगे। यह स्थान एक प्रकार से मेरे लिये साधना-स्थान है! यहाँ बहुत से अनुभव किये जाते हैं।' सचमुच बहुत थोड़े दिन के बाद हमने उनकी जीवन धारा को बदला हुआ पाया और वे उस नगण्य स्थान से उठकर आर्यसमाज की पवित्र और उच्च वेदी पर आ विराजे। कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने के बहुत दिन बाद एक बार कार्यालय में भेंट होने पर हमने पूछा, 'कहिए आपकी मालकिन पर आपकी सर्विस छोड़ने का क्या प्रभाव पड़ा?' बोले, 'उस देवी ने चलते समय केवल यही कहा कि मैं आपको खो रही हूँ। आप शब्द के भाव में ठीक ठीक आर्य हैं।' सचमुच यह पं० जी का नहीं अपितु आर्यसमाज का सम्मान था। इस दुकान पर व्यावसायिक काम से जरा भी अवकाश मिलने पर वे स्वाध्याय द्वारा उसका सदुपयोग किया करते थे। इस दृष्टि से उनका यह कहना अक्षरशः ठीक था कि वह दुकान उनका साधना स्थान थी।

उनकी कविता और भाषण को सुनने से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो प्रतिभा का फव्वारा छूट रहा है। उनके भाषणों में श्रोतागण बहुत संख्या में उपस्थित होते थे और आर्यसमाज के अधिकारी अपने उत्सवों के प्रोग्राम को उनके द्वारा अलंकृत करने के लिए लालायित रहते थे। क्या यह उनकी लोक-प्रियता का प्रबल प्रमाण नहीं है?

पं० जी स्वभाव के बडे विनम्र और मिलनसार थे। अभिमान या दम्भ तो उन्हें छू तक न गया था। विद्यार्थियों से बड़ा स्नेह रखते थे। उनको सन्मार्ग पर रखने के लिये सदैव चिन्तित और प्रयत्नशील रहते थे। समय-समय पर छात्रवृत्तियों द्वारा उनकी पढ़ाई में सहायता देते थे। बिहार के भूकम्प में मलवे में निकले हुए ३-४ बच्चों को अपने साथ लाकर अपने व्यय पर उनकी पढ़ाई की व्यवस्था की। उनका हृदय बड़ा उदार और दयाशील था। दुःखियों का दुःख उनसे

देखा न जाता था। विधवाओं और नेत्रहीन निरुपाय देवियों को मासिक छात्रवृत्तियाँ देकर वे प्रायः अपनी उदारता का परिचय दिया करते थे। उनके प्रशंसक और मित्रगण उनके इन कार्यों की प्रशंसा करते तो बड़े पुरुषों की नाईं हंसकर कह देते, "मैं उन लोगों पर कोई उपकार करता हूँ ? भाई यह मत समझो दुखियों के दुःख को देखकर मेरे हृदय में अशान्ति का जो तूफान उठा करता है उसकी शान्ति के लिये ही मैं ऐसा किया करता हूँ।"

साहित्य-सृजन—उन्होंने बहिनों की बातें, गोपाल कुसुमाञ्जलि, हिन्दुओ बताओ, गोपाल पुष्पाञ्जलि, गोपाल गीताञ्जलि, हमारा समाज, क्या वे अछूत हैं, इत्यादि २ पुस्तकें लिखीं।

आर्यसमाज के प्रति कृतज्ञता—प्रचार दक्षिणा के फल स्वरूप उनके पास कुछ धन राशि एकत्र हो गई थी। उसकी समुचित व्यवस्था के विषय में प्रायः बड़े चिन्तित रहते थे। वे उसे अपना पैसा न समझते थे। उनकी एकमात्र चिन्ता थी कि इस पैसे का गर्हित कार्यों में दुरुपयोग न हो। कैसा ऊँचा भाव था यह ! आशा है उनके उत्तराधिकारी उनके इस भाव का यदि उनका कोई पैसा उन्हें मिला हो, तो उसका समुचित आदर करेंगे।

उपसंहार—मृत्यु से काफी समय पूर्व ही उनका स्वास्थ्य गिर चुका था फिर भी वे ज्यों-त्यों करके गाड़ी धकेल रहे थे। आर्यसमाज के क्षेत्र में यह आम शिकायत है कि वह अपने उपदेशकों की अप्रत्यक्ष रूप से जान ले लेता है। स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य की चिन्ता किए बिना उपदेशकों को निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता है। खराब स्वास्थ्य की दशा में भी पं० सिद्धगोपाल जी को निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए विवश किया जाता रहा। इस दुराग्रह का अवश्यम्भावी परिणाम होकर रहा और हम शीघ्र ही उस बहुमूल्य जीवन से वंचित हो गए।

मृत्यु से लगभग १५ दिन पहले जब आर्यसमाज दीवानहाल के मैनेजर महोदय श्री हरिश्चन्द्र जी (जिनसे उनकी बड़ी घनिष्ठता थी) के कमरे में उन्हें खून की कै हुई तब उन्होंने यही उचित समझा कि वे हाथरस के उसी परिवार में चले जावें।

वहाँ से उन्होंने श्री पं० जनार्दन जी आर्य, गाजियाबाद को अपनी रुग्णता की सूचना दी। वे वहाँ तुरन्त पहुँचे और उनकी अवस्था देखकर चिन्तित हुए। बातों से मालूम हुआ कि पंडित जी अपने जीवन की आशा छोड़ चुके थे। पं० जनार्दन जी ने बड़े संकोच से कहा कि दुःख है कि आप कोई बिल भी न लिख सके। उन्होंने उत्तर दिया, "स्वयं प्रबन्ध कर लीजिये।" परन्तु उनकी सेवा सुश्रूषा से उन्हें अवकाश ही न मिल पाया। हाथरस शहर में उनकी चिकित्सा योग्य डाक्टर ने की। उस परिवार ने तथा श्री पं० जनार्दन व उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी ने मिलकर उनकी खूब सेवा की परन्तु सब विफल रही। २८ नवम्बर १९४७ को लगभग रात्रि के १२ बजे उनकी पवित्रात्मा इस नश्वर देह को छोड़कर विदा हुई। २९ नवम्बर अगहन वदी १ सम्वत् २००४ को मथुरा में यमुना तट पर वैदिक-रीत्यानुसार उनका दाह संस्कार उक्त सज्जनों तथा मथुरा के आर्य भाइयों ने सम्पन्न कराया। जब यह दुःखद घटना पत्रों द्वारा प्रकाशित हुई तो समस्त आर्य जगत् में शोक की लहर दौड़ गई।

एक बार हमने उनसे एक पद्य ठीक कराया था। हमें क्या पता था कि वही पद्य स्वयं उनके ऊपर चरितार्थ होगा। पद्य की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तुम चमके अरु छिप गये, बन विद्युत् ज्वाला प्रखर महान्।
मानस पट पर अमिट रहेंगे, तव गुण-गण के अमर निशान॥

श्रद्धानन्द बलिदान भवन]
देहली ता० १९-४-४९]

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

* ओ३म् *

वैदिक सिद्धान्तों पर—

दो मित्रों की बातें

मित्रो, सुनो !

पं० उमाशंकर और पं० दीनदयालु दोनों ही सगे भाई थे। दीन-दयालु के लड़के का नाम 'कमल' था और उमाशङ्कर के लड़के का नाम 'विमल' था। कमल आयु में छोटा था, और विमल बड़ा था। ये दोनों परस्पर घनिष्ठ मित्र थे। दोनों ही सुशील, सुन्दर, मृदु-भाषी, माता-पिता के भक्त, विद्या प्रेमी और प्रतिभा-सम्पन्न थे। धर्म, समाज, दर्शन आदि विविध विषयों पर दोनों में प्रेम पूर्वक विचार-विनिमय होता था। एक समय तो उनमें ऐसा विवाद चला, जो बारह दिन तक लगातार चला। विवाद भी कितना सुन्दर कितना तर्क पूर्ण, कितना मनोरंजक और कितना शिक्षाप्रद, बस कुछ न पूछिए बहुत ही सुन्दर था ! प्रातःकाल ही दोनों मित्र बैठ जाते, घड़ी सामने रखकर समय निश्चित कर लेते फिर खूब एक दूसरे से सप्रेम प्रश्नोत्तर किया करते। मेरे मित्र इन शब्दों को पढ़कर मन में सोचते होंगे, भला ऐसा क्या विवाद था जिसकी इतनी प्रशंसा की जा रही है ? अच्छा यदि आप यह जानना चाहते हैं, तो पढ़ जाओ, इस संवाद को आदि से अन्त तक। परन्तु पढ़ना जरा ध्यान पूर्वक। फिर देखो आपको कैसी प्रसन्नता होती है, और कैसा आपका ज्ञान बढ़ता है ! यदि ध्यान से न पढ़ोगे तो मैं जिम्मेदार नहीं साफ बात है !!

पहला दिन : प्रातःकाल

ईश्वर है या नहीं ?

कमल—मित्र, तुम कहा करते हो कि नित्य ईश्वर-प्रार्थना किया करो, मैं तुमसे आज यह पूछता हूँ, कि बताओ ईश्वर है कहाँ जिसकी प्रार्थना किया करूँ ?

विमल—ईश्वर सब जगह है, कोई स्थान उससे खाली नहीं हैं।

कमल—यह एक हा कही, जब ईश्वर सब जगह है, तो और चीजें किस जगह हैं ? जगह तो सभी ईश्वर ने घेर ली, कोई स्थान उससे खाली न रहा, तो और चीजें क्या बिना स्थान के ही रहती हैं ?

विमल—नहीं मित्र यह बात नहीं, कोई स्थान ईश्वर से खाली नहीं है, इससे मेरा मतलब यह है कि उसकी सत्ता सब स्थानों में है। बोल-चाल की भाषा में इसी तरह कहा जाता है। ईश्वर की सत्ता जगह को नहीं घेरती। जगह घेरने वाले पदार्थ प्राकृतिक (Material) होते हैं। पृथ्वी, जल अग्नि, वायु तथा उनके परमाणु ये सबके सब जगह को घेरते हैं, ईश्वर तो इन समस्त पदार्थों में व्यापक है। इसलिए कहा जाता है—ईश्वर सब जगह है।

कमल—अच्छा, ईश्वर सब जगह है तो दिखाई क्यों नहीं देता ? जब दिखाई नहीं देता तो उसके होने का प्रमाण ही क्या है ?

विमल—तो क्या, जो चीज दिखाई नहीं देती, वह होती ही नहीं ? संसार में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं, जो होते हैं, परन्तु नहीं दिखाई देते। जैसे सर्दी, गर्मी, सुख-दुःख, समय, दिशा, भूख, प्यास, खुजली दर्द इत्यादि। किसी चीज के दिखाई न देने के बहुत से कारण हो

सकते हैं और होते हैं। संसार में बहुत सी चीजें ऐसी हैं, जो बहुत दूर होने के कारण दिखाई नहीं देतीं-जैसे योरुप, अमेरिका तथा बहुत दूर उड़ती हुई पतङ्ग या पक्षी। बहुत सी चीजें ऐसी हैं, जो अत्यन्त पास होने के कारण नहीं दिखाई देतीं-जैसे आँख और उसमें लगा हुआ सुर्मा। बहुत सी चीज ऐसी हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण नहीं दिखाई देतीं जैसे परमाणु, इसी भांति अनेक प्रकार के कीटाणु हैं जो खुर्दबीन द्वारा ही देखे जाते हैं। बहुत सी चीजें ऐसी हैं, जो परदे के कारण दिखाई नहीं देतीं जैसे काई के परदे के कारण पानी। मैल के परदे के कारण शीशा। दीवार के कारण दीवार के पीछे बैठा हुआ मनुष्य। बहुत सी चीजें किसी एक गुण में समान होने से नहीं दिखाई देतीं, जैसे दूध में पानी, क्योंकि दोनों बहने वाले पदार्थ हैं। बहुत सी चीजें ऐसी होती हैं, जो आँख में दोष होने के कारण नहीं दिखाई देतीं-जैसे पीलिया हो जाने पर सफेदी। इसलिए यह कहना कि जो दिखाई नहीं देता वह होता ही नहीं, सरासर भूल है।

कमल—बिना देखे मुझे तो विश्वास नहीं होता।

विमल—यह तुम्हारा कोरा हठ है। मैं बता चुका हूँ कि बहुत सी चीजें जो आँख से नहीं दिखाई देतीं वे होती हैं और उन पर विश्वास करना ही पड़ता है। अच्छा, बताओ मैं जो बोल रहा हूँ उसे तुम सुन रहे हो या नहीं ?

कमल—हाँ सुन रहा हूँ।

विमल—किससे सुन रहे हो ?

कमल—कानों से।

विमल—जो मैं शब्द बोल रहा हूँ, वह हैं भी या नहीं ?

कमल—हैं क्यों नहीं ?

विमल—फिर उन्हें आँखों से क्यों नहीं देख रहे हो ? अच्छा और लो, मेरे हाथ में यह फूल है, बताओ किसका है ?

कमल—गुलाब का।

विमल—इसमें सुगन्ध है या नहीं ?

कमल—है।

विमल—किससे पता चलाया ?

कमल—नाक से।

विमल—एक बात और बताओ, रात जो तुमने दूध पिया था उसमें बूरा था या नहीं ?

कमल—था।

विमल—उसका अनुभव किससे हुआ।

कमल—जुबान सें।

विमल—अब मैं पूछता हूँ, शब्दों का ज्ञान कानों से, सुगन्धि का ज्ञान नाक से और बूरा का ज्ञान जुबान से ही क्यों हुआ ? आँखों ने शब्दों का, कानों से सुगन्धि का और नाक से मिठास का ज्ञान क्यों नहीं प्राप्त किया ? गन्ध और मिठास के होते हुए भी आँखों ने उन्हें देखा क्यों नहीं ?

कमल—जिस इन्द्रिय का जो विषय था, उसने उसका ज्ञान प्राप्त किया, ईश्वर तो किसी इन्द्रिय से नहीं जाना जाता उसे कैसे मान लें कि वह है ?

विमल—तुम्हारा पक्ष तो यह था, कि ईश्वर दिखाई नहीं देता, इसलिये वह नहीं है, जरा देर में ही बात बदल दी। अच्छा चलो, यह बात तो तुमने मानली कि जो चीजें आँख से दिखाई नहीं देतीं वह भी होती हैं। यह और बात है, कि उसका ज्ञान आँख के अतिरिक्त दूसरी इन्द्रियों से हो। अब तुम इस बात पर आये हो कि ईश्वर किसी इन्द्रिय से नहीं जाना जाता उसे कैसे मानलें कि वह है। अच्छा बताओ, इन्द्रियों से न जानने के कारण तुम ईश्वर को नहीं मानते हो, तो इन इन्द्रियों को ही कैसे जानते हो ? यदि कहो इन्द्रियों को इन्द्रियों से जानता हूँ, तो यह आत्माश्रय दोष है, क्योंकि कोई भी द्रष्टा स्वयम् ही दृश्य नहीं हो सकता। इन्द्रियाँ इन्द्रियों को जान भी कैसे सकती हैं, जबकि उनके भिन्न २ विषय हैं। आँख का रूप कानों

का शब्द, नासिका का गन्ध, जिह्वा का रस और त्वचा का स्पर्श विषय है। नाक आँख को नहीं जान सकती, जिह्वा कानों को नहीं जान सकती।

कमल—वाह ! जान क्यों नहीं सकती ? जब मैं शीशा हाथ में लेता हूँ, तो आँख, मुख, नाक, कान, जिह्वा आदि सब इन्द्रियाँ दिखाई देती हैं। आँख तो वह इन्द्रिय है, जो समस्त इन्द्रियों का ज्ञान प्राप्त करा देती है।

विमल—मित्र, यह तुम्हारी भूल है। आंख से जो भी कुछ देखते हो वह रूप ही देखते हो, अन्य इन्द्रियाँ तथा उनके विषयों को नहीं। शीशे के द्वारा इन्द्रियाँ कहाँ दिखाई देती हैं। इन्द्रियों के गोलक अर्थात् स्थान दिखाई देते हैं, जो रूप वाले हैं। इन्द्रियाँ उन स्थानों में शक्तिरूप में विद्यमान हैं। आँख समस्त इन्द्रियों का ज्ञान तो क्या करायेगी, आँख तो स्वयं अपने को भी नहीं देखती ? और यदि तुम्हारी यही धारणा है कि शीशे से आँख दिखाई देती है, तो लो, मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ ? बताओ यह मेरे हाथ में क्या है ?

कमल—शीशा है।

विमल—शीशा है, यह किससे देखा ?

कमल—आँखों से।

विमल—अच्छा आँखों से शीशे को देखा है, तो शीशा देखने से पहले आँखों का ज्ञान था, इसका मतलब यह हुआ कि यदि आँखें न होतीं तो शीशे को नहीं देख सकती थीं। अब बोलो आँखों से शीशे का ज्ञान होता है या शीशे से आखों का ज्ञान होता है ? यदि शीशे से आँखों का ज्ञान होता तो आँखों के फूट जाने पर शीशा फूटी आँखों का ज्ञान अवश्य करा देता। आँखों के चले जाने पर शीशा आँखों का तो ज्ञान क्या, स्वयं अपना भी ज्ञान नहीं करा सकता और जरा गहराई से सोचोगे तो पता चलेगा कि आँख भी जो कुछ देखती है साधनों की सहायता से देखती है, स्वतन्त्र रूप से नहीं। यह बात तो ठीक

है कि रूप का ज्ञान बिना आँखों के नहीं हो सकता, लेकिन रूप का ज्ञान भी आँखें अपने आप ही नहीं कर लेतीं।

कमल—आँखो को किन साधनों की जरूरत है ? आँखें तो स्वतन्त्र रूप से ही देखती हैं। आँखों का तो विषय ही देखना है जरा बताओ, कि आँखें स्वतन्त्र रूप से क्यों नहीं देखतीं ?

विमल—अच्छा, सुनो, मैं इस समय सारी चीजों को देख रहा हूँ। लेकिन अगर इस समय घोर अँधेरा हो जाय, तो मैं ये सारी चीजे देख सकूँगा या नहीं ?

कमल—नहीं।

विमल—तो पता चला कि देखने के लिए न सिर्फ आँखें ही चाहिए, वल्कि प्रकाश भी। प्रकाश के न होने पर आँखों के होते हुए भी मैं अन्धा हूँ। अच्छा प्रकाश और आँखें दोनों ही चीजें मौजूद हों तो भी मैं नहीं देख सकता, अगर देखने की चीज एक निश्चित स्थान पर न हो। देखो ! यह किताब है, यदि मैं इसके अक्षर एक फर्लाङ्ग की दूरी ने देखना चाहूँ तो नहीं देख सकता। और यदि आँखों पर ही पुस्तक को लगाऊँ तो भी इसके अक्षर नहीं देख सकता। अक्षरों को देखने के लिए एक निश्चित स्थान चाहिए, तब उन्हें देखा और पढ़ा जा सकता है और देखो, आँखें प्रकाश और निश्चित, स्थान भी हो, तो भी नहीं देख सकतीं, यदि मन का सम्वन्ध आँखों से न हो। मन यदि किसी कार्य में लगा हो, आँखों के सामने से चीज निकल जायेगी, परन्तु आँख उसे देख न सकेंगी। बहुधा ऐसा होता है कि सामने से कोई चीज निकल गई, किसी ने पूछा—आपने अमुक चीज को देखा ? तो उत्तर मिलता है, अजी 'मैंने ख्याल नहीं किया' अब तुम समझ गये होंगे कि देखने के लिए कितने साधन चाहिए।

कमल—तुम्हारे इन तमाम बातों के कहने का मतलब क्या हुआ ?

विमल—अब भी नहीं समझे ! मतलब यह हुआ कि अगर ईश्वर को इन्द्रियों से नहीं जान सकते, तो इन्द्रियों को भी इन्द्रियों

से नहीं जान सकते फिर भी इन्द्रियों को मानना पड़ता है, फिर ईश्वर के मानने में ही शङ्का क्यों है ?

कमल—इन्द्रियाँ कैसे जानी जाती हैं ?

विमल—इन्द्रियों को, जीवात्मा अनुभव द्वारा जानता है। क्योंकि जब उनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह जानता है कि यह मेरे पास साधन हैं. जिनसे मैं काम ले रहा हूँ।

कमल—और ईश्वर कैसे जाना जाता है ?

विमल—ईश्वर भी अनुभव से जाना जाता है।

कमल—इसका अनुभव किसको होता है ?

विमल—आत्मा को ही परमात्मा का अनुभव होता है।

कमल—यह अनुभव कब होता है ?

विमल—जब मन के तीन प्रकार के दोष दूर हो जाते हैं।

कमल—ये तीन प्रकार के दोष कौन से हैं ?

विमल—मल, विक्षेप और आवरण ये तीन दोष हैं।

कमल—इनकी परिभाषा क्या हैं ?

विमल—मन में दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार तथा पापों के जो आत्मा पर संस्कार हैं उसका नाम 'मल' है, लगातार विषयों का चिन्तन करने अथवा मन के स्थिर न रहने का नाम विक्षेप है। संसार के नाशवान् पदार्थों के अभिमान का मन पर पर्दा पड़े रहने का नाम आवरण है।

कमल—इन तीन प्रकार के दोषों को किस प्रकार दूर किया जाता है ?

विमल—इनके दूर करने के तीन साधन हैं।

कमल—वह कौन से हैं ?

विमल—ज्ञान, कर्म और उपासना।

कमल—ज्ञान, कर्म और उपासना से क्या मतलब है ?

विमल—जो पदार्थ जैसा हो, उसको वैसा ही समझना। जड़

को जड़, चेतन को चेतन, नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य जानना 'ज्ञान' और शरीर, समाज तथा आत्मा की उन्नति के लिए उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए यत्न करना 'कर्म' और पदार्थों के पास जाकर उनके गुणों से अपने दोषों को सुधारने का नाम 'उपासना' है। कल्पना करो, एक मनुष्य शीत का सताया हुआ है। अगर वह शीत दूर करने के लिए जल के समीप जाता है, तो यह उसका अज्ञान है, ज्ञान नहीं। शीत तो तभी दूर हो सकता है, जब प्रथम उसे अग्नि का ज्ञान हो, फिर शीत शान्त करने के लिए अग्नि की प्राप्ति के लिए कर्म करे और फिर अग्नि के समीप जाकर शीत रूपी दोष को अग्नि के गुण गर्मी से दूर करे। तात्पर्य यह है, ज्ञान से मल, कर्म से विक्षेप और उपासना से आवरण दूर होता है तब कही परमात्मा का अनुभव होता है।

कमल—इसे थोड़ा और स्पष्ट करो। ज्ञान से मल, कर्म से विक्षेप और उपासना से आवरण दोष दूर कैसे होते हैं ?

विमल—ज्ञान के द्वारा समझ लेना कि संसार के सब प्राणी और सब पदार्थ नाशवान् हैं इसलिए दूसरों के अधिकारों को छीनने का भाव न रखना ही 'मल' दोष दूर होना है। किसी के मन में 'विक्षेप' अर्थात् चंचलता तब उत्पन्न होती है, जब वह संसार के पदार्थों को जीवन का उद्देश्य समझ कर उनका प्रयोग करता है। संसार के पदार्थ वास्तव में साधन तो हैं परन्तु साध्य अर्थात् जीवन का उद्देश्य नहीं हैं। यह सिद्धान्त समझकर जो कर्म किया जाता है, वह मनुष्य को जल में कमल की भाँति संसार की ममता से लिप्त नहीं होने देता। निष्काम कर्म से विक्षेप दूर होता है। मनुष्य के मन पर अहङ्कार या अभिमान का जो एक पर्दा होता है, यह परमात्मा प्रदत्त वस्तुओं को अपनी समझता है। मेरा धन मेरी स्त्री, मेरा बल, मेरा राज्य, मेरी हुकूमत आदि २। अभिमान में वह दूसरों को सताता है। वह समझता है मुझसे बड़ा कोई नहीं। परन्तु जब यह ज्ञानपूर्वक कर्म करता है, मन और इन्द्रियों को बाहर के विषयों से

हटाकर शक्तियों को हृदय में एकाग्र करता है और समझता है कि मेरे निकट परमात्मा है और मैं परमात्मा के निकट हूँ। बस इसी उपासना से अहङ्कार अर्थात् 'आवरण' दोष दूर हो जाता है। इस प्रकार तीनों दोषों को तीनों साधनों से दूर करने का निरन्तर अभ्यास परमात्मा का अनुभव करा देता है।

कमल—मित्र तुम्हारे समझाने का ढङ्ग तो अच्छा है। तुम तर्क करने में बड़े चतुर हो। परन्तु मैं यह पूछता हूँ, कि संसार को ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है ?

विमल—संसार को आवश्यकता क्या है यह एक ही कही ! जब ईश्वर ही न होगा तो संसार बनेगा कैसे ? यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे, समुद्र, नदियाँ, झीलें, झरने, स्रोत, सरोवर, पहाड़, वन, उपवन, लता, तरु, फूल, मेवे, दूध, मधु, अनेक प्रकार के दृश्य, अनेक प्रकार की ऋतुएँ, मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर, थलचर, नभचर, अण्डज, उद्भिज, जरायुज आदि अनेक प्रकार की योनियाँ तथा समस्त पदार्थों को बिना ईश्वर के और कौन बना सकता है ?

कमल—इन पदार्थों के बनाने के लिए ईश्वर की क्या आवश्यकता है ? ये तो स्वयं ही बने हुए हैं और सदा से हैं।

विमल—संसार का कोई भी पदार्थ बिना बनाने वाले के नहीं बनता। यदि स्वयं ही बन जाता तो बिना रसोइये के रोटी, बिना कुम्हार के घड़ा, बिना सुनार के जेवर, बिना हलवाई के मिठाई, बिना दर्जी के कपड़े भी स्वयं ही बन गये होते। दूसरे कोई भी बनी हुई चीज सदा से नहीं होती। प्रत्येक चीज में उत्पन्न होना, बढ़ना, बढ़कर रुक जाना, परिवर्तन होना, घटना और अन्त में नष्ट हो जाना यह ६ विकार मौजूद हैं। बड़े से बड़ा पहाड़, बड़े से बड़ा वृक्ष, बड़े से बड़ा पशु तथा संसार की बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई है और अन्त को नष्ट हो जायगी।

कमल—पर मुझे तो परमात्मा कहीं कोई चीज बनाते हुए नजर नहीं आता। सब चीजें अपने आप ही उत्पन्न हो रही हैं और नष्ट हो रही हैं। ऐसा सिलसिला सदा से रहा है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और उनके परमाणु जगत् में मौजूद हैं, वे ही परस्पर में मिलकर पदार्थों की उत्पत्ति और अलग होकर पदार्थों का विनाश कर रहे हैं। उसमें ईश्वर का क्या काम ?

विमल—यह विचार भ्रमपूर्ण है। पृथ्वी आदि तत्व तथा उनके परमाणु जड़ हैं, वे न बिना मिलाये मिल सकते हैं, न अलग हो सकते हैं। मिलना और बिछुड़ना दो विपरीत गुण हैं, जो किसी भी जड़ अर्थात् बेजान पदार्थ में एक जगह नहीं रह सकते। किसी भी जड़ पदार्थ में कई गुण तो हो सकते हैं परन्तु दो विपरीत गुण नहीं हो सकते। किसी भी पदार्थ का अगर मिलने का स्वभाव है, तो वह मिलता ही चला जायगा और अलग २ रहने का स्वभाव है तो वह कभी मिलेगा ही नहीं। यदि यह कहो कि प्रकृति के तत्वों में कुछ का स्वभाव मिलना और कुछ का स्वभाव अलग होना हो, तो जिन तत्वों की प्रबलता होगी उन्हीं के अनुकूल काम होगा। अर्थात् यदि मिलने वाले तत्वों की प्रबलता है तो वे जगत् को कभी विगड़ने न देंगे और यदि विगड़ने वाले तत्वों की प्रवलता है, तो वे जगत् को कभी बनने न देंगे और यदि बराबर २ रहने का स्वभाव है, तो जहाँ दो तत्व मिलेंगे वहाँ दो ही अलग होंगे, तो भी कोई चीज नहीं बन सकती। परन्तु संसार में प्रत्येक चीज बनती बिगड़ती और स्थिर रहती हुई देखी जाती है। प्रकृति के तत्वों में तुम चाहे कितने ही गुणों की कल्पना क्यों न कर लो, नियमपूर्वक उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की सम्भावना बिना ईश्वर के उनमें हो ही नहीं सकती। जड़ और चेतन में यही अन्तर है कि प्रथम तो जड़ वस्तु काम ही नहीं कर सकती, दूसरे यदि चेतन के सहारे कुछ कार्य करेगी भी, तो एक ही प्रकार का कार्य करती रहेगी। चेतन अर्थात् ज्ञानवान् सत्ता में यह शक्ति है, कि वह किसी कार्य को करे या न करे या उल्टा करे। यह गुण चेतन सत्ता में स्वभाव से ही विद्यमान है।

कमल—जो किसी पदार्थ का बनाने वाला होता है वह प्रत्यक्ष दिखाई देता है, जेबर को बनाने वाला सुनार, मिठाई को बनाने वाला हलवाई, घड़े को बनाने वाला कुम्हार, घोंसले को बनाने वाला पक्षी ये सब के सब दिखाई देते हैं। अगर ईश्वर दुनियाँ का बनाने वाला होता तो वह भी दिखाई देता ही।

विमल—विश्वास रखो, बनाने वाला अर्थात् कर्त्ता कभी दिखाई नहीं देता। तुम्हारा यह कहना कि सुनार, हलवाई, कुम्हार आदि दिखाई देते हैं सर्वथा झूंठ है। तुम कहोगे कैसे? अच्छा सुनो कुम्हार, सुनार, हलवाई आदि जितने कर्ता हैं वे दो चीजों के बने हुए हैं, एक भौतिक शरीर, दूसरा अमर जीवात्मा। शरीर जीवात्मा का क्या है? कार्य करने का एक साधन है। जब जीवात्मा इस शरीर रूप साधन को काम में लाता है, तभी कुछ बना पाता है। अगर इस साधन को काम में न लाये, तो चीज नहीं बन सकती। अब सोचो—सुनार, कुम्हार, हलवाई आदि का शरीर तो नजर आता है जो काम करने का एक यन्त्र है और पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि पंचतत्वों से बना हुआ है लेकिन जीवात्मा जो शरीर से काम लेता है, अर्थात् कर्त्ता है वह नजर नहीं आता। जीवात्मा बिना शरीर के कोई चीज बना नहीं सकता उसकी शक्तियाँ सीमित हैं, इसलिए परमात्मा उसे शरीर देता है, जो कि दिखाई देता है। परमात्मा असीम अनन्त और सर्वव्यापक है। यह बिना शरीर के ही अपने सारे कार्य करता है। दिखाई दोनों कर्त्ता नहीं देते, न जीवात्मा रूपी अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान् कर्त्ता, न परमात्मा रूपी सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ कर्त्ता।

कमल—जब परमात्मा के शरीर नहीं तो वह संसार को बना भी कैसे सकता है? बिना शरीर के न तो क्रिया हो सकती है, और न कार्य ही हो सकते हैं।

विमल—अब विचार-विनिमय का समय पूर्ण हो चुका है, कल प्रातः इस प्रश्न का उत्तर दिया जायगा।

कमल—अच्छा, कल ही सही।

दूसरा दिन : प्रातःकाल

क्या ईश्वर सृष्टिकर्ता है ?

कमल—तो मित्र, कल के प्रश्न का उत्तर दो ?

विमल—तुम्हारा कल का प्रश्न था कि जब परमात्मा के शरीर ही नहीं, तो संसार कैसे बना सकता है, क्योंकि बिना शरीर के न तो क्रिया हो सकती है और न कार्य हो सकता है ? मित्र ! यह भी तुम्हारी भूल है। चेतन पदार्थ जहाँ पर भी उपस्थित होगा, वहाँ वह क्रिया कर सकेगा और क्रिया दे सकेगा। जहाँ पर उपस्थित नहीं होगा वहाँ पर शरीर आदि साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। देखो, मैंने यह पुस्तक उठाई। बताओ किससे उठाई ?

कमल—हाथ से।

विमल—अगर हाथ न होता तो मैं पुस्तक को उठा सकता था या नहीं ?

कमल—नहीं।

विमल—अच्छा, हाथ ने तो किताब को उठाया, अब बताओ हाथ को किसने उठाया ?

कमल—हाथ को अपनी शक्ति ने उठाया।

विमल—और लो, मैं अपने सारे शरीर को हिला रहा हूँ, बताओ किससे हिला रहा हूँ ?

कमल—अपनी शक्ति से।

विमल—तुम तो कहते थे कि बिना शरीर के कोई क्रिया नहीं हो सकती। फिर बिना शरीर के इस शरीर को क्रिया कैसे मिल गई ? पता चला चेतन और उसकी शक्ति जहाँ-जहाँ मौजूद हैं वहाँ २ उसे शरीर की आवश्यकता ही नहीं। जीवात्मा शरीर के भीतर होने के कारण सारे शरीर को क्रिया देता है, और शरीर से बाहर के पदार्थों को शरीर से क्रिया देता है क्योंकि वहाँ वह उपस्थित नहीं

। परमात्मा बाहर भीतर सर्वत्र विद्यमान है, इसलिए उसे शरीर
ी जरूरत नहीं पड़ती। वह सारे संसार में व्यापक होने के कारण
ारे संसार को क्रिया देता है।

कमल—मैं देखता हूँ, शक्ल वाला ही शक्ल वाली चीज को
नाता है, जैसे हलवाई, सुनार आदि। निराकार परमात्मा जगत्
ो कैसे बना सकता है ?

विमल—जितने शक्ल वाले कर्त्ता हैं, वे अपने से बाहर की
ीजों को बनाते हैं, अपने भीतर की चीजों को नहीं। बाहर की चीजों
े लिए हाथ पैर की जरूरत है, भीतर के लिए नहीं। परमात्मा से
ोई चीज बाहर नहीं, इसलिये उसे शरीर की आवश्यकता नहीं।
लवाई अपने से बाहर की चीजें बनाता है, यदि उन्हें अपने शरीर के
ीतर ही बनाने लगे तो उसे खायेगा कौन ? और फिर उसे हाथ पैरों
ी आवश्यकता ही क्या है ? शरीर के भीतर रस, रक्त, माँस, हड्डी
ादि पदार्थ बिना हाथ पैरों के ही बन रहे हैं। एक बात पर विचार
ौर करो कि इन्द्रियाँ बाहर की चीजें बनाती हैं, और बाहर की चीजें
ी देखती हैं अगर भीतर की चीजें देखने लग जायें तो जीना भारी
ो जाये। भीतर की चीजें सूँघने लगें तो क्या हाल हो ? आँख भीतर
ा मल, मूत्र, खून, माँस, देखने लगें, तो घृणा से व्याकुल हो जाँय। यह
ो भगवान् की कृपा है, जो इन्द्रियाँ बाहर की चीजों को देखती हैं।

कमल—क्या बनाने वाला बनी हुई चीजों में व्यापक होता
है ? घड़ी-साज ने घड़ी बनाई, घड़ी अलग है, घड़ी-साज अलग है।
हलवाई ने मिठाई बनाई, मिठाई अलग है, हलवाई अलग है। दुनियाँ
का नियम तो यह है कि बनाने वाला बनी हुई चीज से अलग होता
है। परमात्मा सबमें व्यापक भी हो और संसार को भी बनाता हो
भला यह कैसे हो सकता है ? दूसरे बिना हाथ पैर के चीजें बन कैसे
जाती हैं, समझ में बात आती नहीं है।

विमल—घड़ीसाज, हलवाई आदि एक देशी और अल्पज्ञ कर्त्ता

हैं, इनके कर्तापने की जहाँ तक जिम्मेदारी है, वहाँ तक उनकी क्रिय
और वे पदार्थ के साथ हैं। जहाँ वे न हों वहाँ उनसे सम्बन्ध रख
वाली क्रिया हो ही नहीं सकती। जैसे घड़ीसाज ने घड़ी बनाई, बन
का मतलब यही है, कि उसके पुर्जों को परस्पर में जोड़कर उसमें क्रिय
दे दी। घड़ीसाज ने पुर्जों को जोड़ा है, पुर्जों को बनाया नहीं। पुर
के बनाने वाले दूसरे कर्त्ता हैं। घड़ीसाज घड़ी के पुर्जों को जोड़ते सम
घड़ी के साथ था। अगर न होता तो घड़ी के पुर्जे परस्पर में मिल
कर घड़ी का रूप धारण नहीं करते। इसी तरह पुर्जों के कर्ता औ
उनकी क्रिया उन पुर्जों के साथ है। यदि वे पुर्जों के साथ न होते त
पुर्जे न बनते। इसी भाँति जिस लोहे से पुर्जे तैयार किये गये उ
लोहे को खान से निकालने वाले और उसे गलाकर साफ करने वाल
खान, भट्टी और लोहे के साथ थे। यदि वे साथ न होते तो न त
खान से लोहा निकलता और न साफ हो सकता था। इससे मालू
हुआ कि घड़ी बनाने में केवल एक कर्त्ता का साथ व हाथ नहीं ह
बल्कि अनेकों कर्त्ताओं की क्रिया से वह घड़ी तैयार हुई है। जिस कर्त्त
से सम्बन्ध रखने वाली जो क्रिया थी वह कर्त्ता उसके साथ था। इस
तरह हलवाई, सुनार आदि कर्त्ताओं की अवस्था है वे सब अपनी
क्रियाओं के कर्त्ता हैं। शेष कर्त्ता तो और ही हैं, जिन्होंने वह सामग्र
पैदा कर दी, जिससे हलवाई, सुनार आदि अपनी-अपनी क्रियाओं
को सफल कर सकें और पदार्थ बना सकें।

अब तुम समझ गये होगे कि मनुष्य जिस चीज को बनाता है
उसमें केवल उसी का हाथ नहीं होता, बल्कि अनेकों मनुष्यों का हाथ
होता है, तब जाकर चीज बनती है। ऐसा क्यों होता है? इसलिए
कि मनुष्य अल्पज्ञ और अल्प शक्तिमान् है। वह अनेक कर्त्ताओं का
सहयोग पाने पर ही किसी वस्तु को बना पाता है। और वे कर्त्ता
अपनी २ क्रियाओं के साथ होते हैं। अब सोचो जब मोटे २ कामों में
उनके कर्त्ता साथ होते हैं तो मोटी और बारीक से बारीक सृष्टि बनाने
में उसका कर्त्ता ईश्वर उनके साथ क्यों न होगा? सृष्टि केवल सूर्य

चन्द्र तारे, पहाड़, वृक्ष, नदियाँ, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि का ही नाम नहीं है, और भी अनन्त और सूक्ष्म ऐसी चीजें हैं जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते । वे सभी चीज सृष्टि कहलाती हैं । देखो ! पाँच स्थूल भूत, पाँच सूक्ष्म भूत, पाँच तन्मात्रायें—अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, अनेक प्रकार के अणु-परमाणु जिनसे सृष्टि की रचना होती है, अगर उनका जोड़ने वाला उनके साथ न हो, तो क्या वे पदार्थों का रूप धारण कर सकेंगे ? संसार की समस्त चीजें प्रकृति के परमाणुओं से बनी हैं । संसार में आज तक कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना, जो परमाणुओं को पकड़ कर जोड़ सके । परमाणु वे सूक्ष्म तत्व हैं जिनके टुकड़े नहीं हो सकते । परमात्मा उन परमाणुओं के बाहर भीतर सर्वत्र विद्यमान है, इसलिए वह उन्हें छोड़कर सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल जगत् बना लेता है । संसार के जड़ पदार्थों में परमाणु सबसे सूक्ष्म हैं । परमात्मा उनसे भी अधिक सूक्ष्म है और इसलिए वह उनमें व्यापक है । अगर व्यापक न होता तो सृष्टि बनाने में उसे भी अन्य कर्त्ताओं की क्रिया का आश्रय लेना पड़ता, जैसा कि संसार के मनुष्यादिक प्राणियों को अन्य कर्त्ताओं व क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है । अतः सिद्ध हुआ, प्रत्येक कर्त्ता अपनी क्रिया में व्यापक वही होता है, जहाँ तक उसकी क्रिया की जिम्मेदारी है । रहा ये प्रश्न कि बिना हाथ पैरों के चीजें कैसे बन जाती हैं ? अगर यह मान लिया जाय कि हर चीज हाथ पैरों से ही बनती है तो जो हाथ पैर चीज बनाते हैं, वे हाथ पैर किससे बने हैं ? हाथ, पैर भी तो बने हुये हैं । जब हाथ पैर बिना हाथ पैरों के वन सकते हैं, तो सृष्टि के अन्य पदार्थ बिना हाथ पैरों के क्यों नहीं बन सकते ! मैं पूछता हूँ, माता के पेट में जो बच्चा बन रहा है, क्या हाथ पैरों से बन रहा है ? पृथ्वी पर नाना प्रकार के अंकुर उत्पन्न होकर वृक्ष का रूप धारण कर रहे हैं, क्या उन्हें हाथ पैरों से बनाया जा रहा है ? और देखो हाथ पैर तो हाथ पैरों से ही सम्बन्ध रखने वाली चीज बना सकते हैं, दूसरी चीजें नहीं बना सकते । हाथ पैरों से छोटे-छोटे कीटाणु मच्छर और भुनगे तथा उनके

सूक्ष्म अंग कैसे बन सकते हैं ? जिस पृथ्वी पर मनुष्यादि प्राणी रहते हैं उसकी परिधि २५००० मील है, इससे भी लाखों-करोड़ों गुणा बड़े सूर्य बृहस्पति आदि ग्रह हैं, ये सबके सब-हाथों से कैसे बनाये जा सकते हैं ? इन समस्त पदार्थों को नियम पूर्वक बनाने वाला सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक परमात्मा ही है। वही सारा कार्य नियम पूर्वक चला रहा है।

कमल—मित्र, आप एक न एक नई बात निकाल देते हैं नियम-पूर्वक क्या कार्य चल रहा है ? और क्या नियम-पूर्वक चीजें बनी हुई हैं ? मैं देखता हूँ कहीं ऊँचा पहाड़ है, कहीं नीची खाई है। कहीं भयानक जंगल है। कहीं रेतीला मैदान है। कहीं झाड़, झंकार और झाड़ियाँ है। इनमें कौनसा क्रम और कौनसा नियम है ? सब यूँ ही ऊबड़-खाबड़ बेतरतीब और बे-नियम संसार बना हुआ है नियम पूर्वक जो कार्य होता है, वह एक ढङ्ग के साथ होता है। मनुष्य मकान बनाता है, इसमें नियम-पूर्वक चौक, आँगन, कमरे, रसोई घर शौचालय की व्यवस्था करता है। माली बाग लगाता हैं, उसमें नालियां, क्यारियां, गमले, नहरें, रौस अनेक प्रकार के पेड़-पौधे नियम पूर्वक लगाता है। दूकानदार दूकान लगाता है, सारा सौदा नियम पूर्वक सजाता है। मनुष्यों के कार्य में तो नियम पाया जाता है लेकिन तुम बेढङ्गी और क्रम विरुद्ध सृष्टि को नियम-पूर्वक बतलाते हो जो सरासर प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। मेरी समझ में सृष्टि में कोई नियम नहीं है।

विमल—सृष्टि में कोई नियम नहीं है, यह कहना बेसमझी का प्रमाण देना है। मैं पूछता हूँ कि क्या कारण है कि सूर्य पूर्व दिशा से उदय होता है और पश्चिम में अस्त हो जाता है ? क्यों नहीं पश्चिम से उदय होने लगता, क्या यह नियम नहीं है ? मनुष्य की बनाई हुई अच्छी से अच्छी घड़ी तेज सुस्त हो जाती है परन्तु परमात्मा की बनाई हुई सूर्य रूपी घड़ी में कभी एक सेकिण्ड का भी अन्तर होता है ? चन्द्रमा के घटने, बढ़ने और छिपने का नियम कैसा अटल है ?

इसी नियम के आधार पर वर्षों आगे होने वाले सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण को बतलाया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों और उप-ग्रहों का हाल है। जरा सोचो तो सही, क्या कारण है कि चने के बीज से चना ही पैदा होता है, गेहूँ नहीं ? क्या कारण है आम से आम ही पैदा किया जा सकता है, सेव या सन्तरा नहीं ? क्या कारण है कि बच्चा उत्पन्न होकर पहले जवान होता है बाद में वृद्ध ? क्यों नहीं पहले बूढ़ा होकर जवान और बाद में बच्चा होता ? क्या कारण है कि आंख से दिखाई देता है, सुनाई नहीं देता ? क्या कारण है, नाक सूंघ सकती है, चख नहीं सकती ? इन सबके लिये नियम ही तो हैं। यह कह देना कि कहीं पहाड़ हैं, कहीं नदियाँ हैं, कहीं समुद्र हैं कहीं ऊँचे-नीचे टीले हैं, कहीं झाड़-झङ्कार हैं, इसलिये सृष्टि नियमबद्ध नहीं, कोरी अज्ञानता है। तुम अपनी बुद्धि के पैमाने से सृष्टि को नापते हो। संसार का नियम है कि जो बात जिसकी समझ में नहीं आती वह उसमें दोष निकालता है। एक चींटी जब मनुष्य के शरीर पर चढ़ जाती है और सिर पर पहुँचती है, तो बालों में उलझ कर सोचती है कि शरीर कैसा बे-नियम बना हुआ है ? कैसा सिर पर झाड़-झंकाड़ है ? सिर से उतर कर नीचे माथे पर आती है, तो सोचती है, यहाँ कैसा साफ मैदान पड़ा हुआ है। फिर जरा नीचे उतरती है, तो आँखों की भौं में उलझकर सोचती है, यहाँ कैसा काँटों का जाल बिछा हुआ है। फिर जरा नीचे उतरती है और आँखों के पास आती है तो सोचती है, अरे ! यहाँ कैसी खाई बना रक्खी है। फिर जरा नीचे उतरती है और नाक पर चढ़कर बोलती है यहाँ पहाड़ खड़ा कर रक्खा है। नाक के नीचे उतर कर दोनों छेदों को देखकर कहती है यहाँ सुरंगें खोद रक्खी हैं ? और नीचे उतरती है और मूछों में उलझकर बोलती है यहाँ घना जंगल खड़ा कर रखा है। वह चींटी अपनी बुद्धि के नाप से मनुष्य के शरीर को नापती है, और उसे बेनियम बताती है। यदि चींटी की सुविधा के लिए मनुष्य के शरीर को बिलकुल सपाट और

साफ मैदान कर दिया जाय, नाक के छेद बन्द कर दिये जाँय, मूँछ और सिर के बाल साफ करके आँखों के गड्ढे भर दिये जाँय, नाक को काटकर माथे की तरह सारी शक्ल को समतल कर दिया जाय, तब कहीं उसके लिये मनुष्य का शरीर नियमपूर्वक हो सकता है। मैं पूछता हूँ कि यदि चींटी की भावना और बुद्धि के अनुसार मनुष्य का शरीर बना दिया जाय, तो वह मनुष्य, मनुष्य रहेगा ? और उसमें वह सौन्दर्य और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का नियम पूर्वक व्यवहार रहेगा ? हरगिज नहीं। दूसरा उदाहरण लो। एक कारीगर मशीन बनाता है। उस मशीन में हजारों पुर्जे हैं। कोई पुर्जा गोल है; कोई लम्बा है, कोई चौड़ा है, कोई टेढ़ा है, कोई तिरछा है कोई बहुत बड़ा है, कोई बहुत छोटा है। एक अज्ञानी उस मशीन को देखकर कहता है कि मशीन के पुर्जे बनाने वाला कैसा वेबकूफ है। कोई पुर्जा कितना बड़ा, कोई कितना छोटा, कोई कितना लम्बा, कोई कितना चौड़ा, कोई गोल, कोई चपटा—यह कैसा बेनियम सिलसिला जोड़ रक्खा है, यह कैसे बेतरतीब पुर्जे वनाये हैं ? बताओ उस मनुष्य का ऐसा सोचना क्या बुद्धि पूर्वक है ? मशीन के बनाने वाले ने जिस-जिस प्रकार के पुर्जे बनाना ठीक समझा, उसी प्रकार के बनाये। वह जानता था कि इसी प्रकार के पुर्जों से मशीन चल सकेगी। और वह प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा जिसके लिए मशीन बनाई गई। अगर वह सारे पुर्जे एक जैसे ही गोल या लम्बे बना देता तो मशीन चल सकती थी ? कभी नहीं। यही हाल परमात्मा और उसकी सृष्टि का है। इस सृष्टि रूप मशीन में कहीं बहुत बड़े २ पहाड़ हैं, कहीं छोटे-छोटे टीले हैं, कहीं समुद्र हैं, कहीं नदियाँ हैं, कहीं वन और झाड़ियाँ हैं। परन्तु इस सृष्टि रूपी मशीन का एक प्रयोजन है। वह प्रयोजन है–जीवों का कल्याण। अज्ञानी मनुष्यों को सृष्टिरूपी मशीन के पुर्जे भौंड़े भद्दे और बेनियम नजर आते हैं, क्योंकि वह न तो जगत् का प्रयोजन समझते हैं और न सृष्टिरूपी मशीन के समुद्र, नदी पहाड़, आदि पुर्जों की उपयोगिता समझते हैं। माली और दूकानदार आदि का उदाहरण तुमने दिया है,

उनके नियम अत्यन्त छोटे हैं, इसलिये उन्हें तुम शीघ्र ही समझ लेते हो। सृष्टि के नियम विशाल और अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जिन्हें तुम नहीं समझ पाते हो। जरा विचार तो करो, जिस मस्तक से संसार के मनुष्य नियम बनाते हैं वह मस्तक भी तो उसी नियामक प्रभु का बनाया हुआ है, जिसने सृष्टि के असंख्य नियम बनाये हैं। अगर संसार के नियम न होते, तो परमात्मा को मानता ही कौन ? सृष्टि के अटल नियम ही सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का प्रमाण देते हैं।

कमल—अच्छा, सृष्टि तो ईश्वर ने बनाई, ईश्वर को किसने बनाया ?

विमल—बने हुए पदार्थ कार्य होते हैं, उनको उपादान कारण और कर्त्ता की आवश्यकता होती है, ईश्वर बना हुआ पदार्थ नहीं है वह अनादि और सनातन है। अतएव यह प्रश्न ही नहीं उठता कि ईश्वर को किसने बनाया। जो स्वयं कर्त्ता है,-उसका कर्त्ता कौन ? यदि कर्त्ता का कर्त्ता हो, तो कर्त्ता नहीं रहता, कारण बन जाता है। कर्त्ता वह है जो स्वतन्त्र हो। जो बने हुए पदार्थ हैं वह कर्त्ता नहीं होते मनुष्यादि प्राणी जो कर्त्ता कहाते हैं उनका शरीर कर्त्ता नहीं है, साधन है। कर्त्ता आत्मा है। 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' वह स्वतन्त्र है।

कमल—अच्छा कर्त्ता का कर्त्ता न सही, लेकिन तुम यह बतलाओ, हमें ईश्वर को क्यों मानना चाहिए। हम उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना और भक्ति क्यों करें ? हमारे जीवन से उसका सम्बन्ध क्या है ?

विमल—इस पर विचार कल किया जायगा।

—❀—

तीसरा दिन : प्रातःकाल

ईश्वर भक्ति क्यों करें ?

कमल—लो, मित्र, मैं आ गया। कल के प्रश्न का उत्तर दो।

विमल—तुम्हारा कल का प्रश्न था—ईश्वर की भक्ति क्यों करनी चाहिए, उसकी स्तुति, प्रार्थना से क्या लाभ है? अच्छा, सुनो! संसार का प्रत्येक पदार्थ अपने भण्डार या केन्द्र की ओर जाना चाहता है। यह नियम जड़ और चेतन दोनों प्रकार के पदार्थों पर लागू होता है। अग्नि की ज्वाला सदैव ऊपर की ओर जाती है, क्योंकि अग्नि का भण्डार सूर्य ऊपर विद्यमान है। मिट्टी का ढेला चाहे कितनी जोर से ऊपर की ओर फेंको, वह सदैव अपने भण्डार पृथ्वी की ओर ही अन्त में आता है। सूर्य की किरणें समुद्र के जल को भाप बनाकर हवा में सम्मिलित कर देती हैं, परन्तु वही भाप बादल में परिवर्तित होकर जल बनकर बरसती हैं और अनेकों नदी-नालों द्वारा पुनः समुद्र में पहुँच जाती हैं। यही अन्य पदार्थों का हाल है। संसार में प्रत्येक वस्तु का भण्डार मौजूद है। जल का भण्डार समुद्र, अग्नि का भण्डार सूर्य, वायु का भण्डार वायु-चक्र, मिट्टी का भण्डार पृथ्वी, घटाकाश मठाकाश का भण्डार वृहदाकाश। इसी भाँति ज्ञान का भी भण्डार जगत् में मौजूद है और वह परमात्मा है। मनुष्य को जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह परमात्मा से ही हुआ है। किसी मनुष्य में बिना पढ़ाये ज्ञान-प्राप्ति की योग्यता नहीं है। यदि मनुष्य में बिना पढ़ाये ज्ञान प्राप्ति की योग्यता होती तो स्कूल, कॉलिज, पाठशालायें तथा विद्यालयों की आवश्यकता ही न थी और न पढ़ाने वालों की आवश्यकता थी। माता, पिता अपने बच्चों को प्रारम्भ में बोलना सिखाते हैं और पदार्थों का ज्ञान कराते हैं। यह पैसा है, यह रुपया है, यह रोटी है, यह पानी है, यह चाचा है, यह भाई है, ऐसी २ हजारों बातें

याद कराते और बताते हैं। फिर वे ही बच्चे पाठशाला में गुरु द्वारा संसार के विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। लेकिन उन माताओं और पिताओं तथा गुरुओं का ज्ञान भी अपना नहीं होता है। उन्होंने भी अपने माता-पिता और गुरुओं से वही बातें सीखी हैं। इसी तरह हर एक व्यक्ति एक दूसरे से ज्ञान प्राप्त करता हुआ चला आया है। प्रश्न उत्पन्न होता है, जब सबने एक दूसरे से ज्ञान प्राप्त किया है, तो सृष्टि के आदि के मनुष्यों ने किन माता-पिता और गुरुओं से ज्ञान सीखा ? क्योंकि उनसे पहले तो कोई था ही नहीं। उत्तर यही है, उस समय उन्होंने परमात्मा से ज्ञान सीखा। यदि कहा जाय परमात्मा ने ज्ञान कैसे सिखाया कैसे परमात्मा ने मनुष्यों को पढ़ाया, जब कि उसके शरीर ही नही है ? इसका उत्तर यह है ज्ञान देने और पढ़ाने में अन्तर होता है। पढ़ाया जाता है शब्दों द्वारा और ज्ञान दिया जाता है आत्मा में। परमात्मा सर्वत्र व्यापक होने के कारण उन मनुष्यों में भी व्यापक होता है, जिनको वह सृष्टि के आदि में बनाता है। अतएव अपनी ज्ञानमयी शक्ति से चार ऋषियों की आत्मा में ज्ञान का प्रकाश करता है, जिनके अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नाम हैं। वे ही ऋषि शब्दों द्वारा संसार के अन्य मनुष्यों को फिर पढ़ाते हैं और तब पढ़ने और पढ़ाने का क्रम चल पड़ता है। अगर परमात्मा सृष्टि के आदि में ऋषियों को ज्ञान न देते, तो पढ़ने-पढ़ाने की परम्परा चल ही नहीं सकती। इससे सिद्ध है कि मनुष्यों ने जो भी ज्ञान सीखा है वह परम्परा से सीखा है, और ज्ञान का विकास किया है वह परमात्मा की दी हुई बुद्धि से परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि को देखकर किया है। मनुष्य ज्ञान का विकास तो कर सकता है परन्तु ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक उसे ज्ञान प्राप्त न कराया जाय। आदि सृष्टि में ऋषियों के हृदय में परमात्मा बीज रूप ज्ञान देता है। बाद में वृक्ष रूप विकास ऋषियों और बुद्धिमान् मनुष्यों द्वारा होता है। यही सदा से नियम रहा है, और रहेगा। हां, तो मैं यह कह रहा था कि जब संसार का प्रत्येक पदार्थ अपने भण्डार

की ओर जाना चाहता है और जाता है तो चेतन जीवात्मा जो कि अल्पज्ञ अर्थात् थोड़े ज्ञान वाला है वह ज्ञान के भण्डार चेतन परमात्मा की ओर जाना क्यों न चाहेगा ? जीवात्मा भी परमात्मा की ओर जाना चाहता है, क्योंकि उसका विकास अर्थात् उन्नति बिना परमात्मा के हो ही नहीं सकती। जड़ का जड़ से और चेतन का चेतन से विकास होता है। संसार के किसी भी जड़ पदार्थ से चेतन जीवात्मा की उन्नति नहीं हो सकती। हाँ, जड़ पदार्थों से जड़ शरीर की उन्नति अवश्य हो सकती है, यदि वह उनका ज्ञानपूर्वक उपयोग करे। जीवात्मा अज्ञानतावश संसार के पदार्थों में उन्नति की खोज करता है परन्तु उनसे उन्नति होती नहीं इसलिए वह अशान्त रहता है। संसार में जितना भी दुःख है वह अज्ञानता के कारण है। पदार्थों की वास्तविकता का अगर जीवात्मा को पता हो तो उसे दुःख हो ही नहीं सकता। दुःख और बन्धनों का आवरण जीवात्मा पर भी तभी तक है जब तक वह अविद्या को विद्या, असत्य को सत्य और जड़ को चेतन समझ रहा है। ज्ञान का भण्डार परमात्मा ही सुखों का भण्डार है। उसके अतिरिक्त सुख संसार के किसी भी पदार्थ में नहीं है। अगर संसार के पदार्थों में सुख होता तो सारा संसार सुखी नजर आता, परन्तु अवस्था यह है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। जब सुख चाहता है तो पता चला सुख उसके पास नहीं हैं। यदि होता तो सुख चाहता ही क्यों ? बस ईश्वर की भक्ति और स्तुति प्रार्थना करने का यही मतलब है कि मनुष्य को परमात्मा से प्रेम हो जाए, जो उसके जीवन का उद्देश्य है। ज्यों-ज्यों मनुष्य परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना शुद्ध मन से करेगा त्यों २ वह ईश्वर के समीप होता चला जायेगा और अन्त में संसार के समस्त दुःखों और बन्धनों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हो जायगा।

कमल—मित्र ! तुम्हारा यह कहना मिथ्या है कि संसार के पदार्थों में सुख नहीं हैं। यदि संसार के पदार्थों में सुख न होता, तो संसार के प्राणी संसार के पदार्थों को क्यों चाहते ? यदि धन में सुख

न होता तो लोग धन को क्यों एकत्र करते ? भोजन में सुख न होता तो लोग भोजन क्यों करते ? वस्त्रों में सुख न होता, तो लोग वस्त्र क्यों पहनते ? यदि मकान महल आदि में सुख न होता, तो लोग उन्हे क्यों बनाते ? तात्पर्य यह है, कि संसार के प्रत्येक पदार्थ में सुख है तभी लोग उसे चाहते हैं और उन्हें छोड़ना नहीं चाहते। पदार्थों के संयोग से मनुष्य सुख मानता है और वियोग में दुःख मानता है। फिर कैसे मान लें कि संसार के पदार्थों में सुख नहीं।

विमल—मित्र ! वास्तव में संसार के पदार्थों में सुख नहीं है, सुखाभास है, अर्थात् सुख सा प्रतीत होता है। सुख तो प्रत्येक मनुष्य के अपने ही अन्दर है। जब मनुष्य संसार के किसी पदार्थ का प्रयोग करता है और उसे सुख प्रतीत होता है तो वह समझता है कि इस पदार्थ से ही सुख मिल रहा है, पर वास्तव में सुख उस पदार्थ से नहीं मिल रहा है। उसी की चित्त की एकाग्रता से उसे सुख अनुभव हो रहा है। कुत्ता जब हड्डी को चूसता है, तो दाढ़ के छिल जाने से खून निकलने लगता है। ज्यों २ खून निकलता है त्यों २ वह और जोर के साथ उसे चूसता है। वह समझता है, कि हड्डी से ही खून निकल रहा है। लेकिन निकल रहा है उसकी अपनी दाढ़ से। हड्डी में खून कहाँ हैं ? ठीक इसी प्रकार संसार के पदार्थों में सुख कहाँ हैं ? सुख तो अपने ही अन्दर है, जो प्रत्येक प्राणी को अनुभव होता है। देखो यदि धन में सुख होता, तो कोई धनी दुःखी न देखा जाता। परन्तु जितनी चिन्तायें, भय और दुःख धनियों को हैं, उतने निर्धन को नहीं। यदि एक धनवान् आदमी बीमारी से कष्ट पा रहा है, तो वह धन से दवा खरीद सकता है परन्तु तन्दुरुस्ती नहीं खरीद सकता। यदि वह मूर्ख है, तो पुस्तकें खरीद सकता है, मास्टर नौकर रख सकता है, परन्तु धन से विद्या प्राप्त नहीं कर सकता। विद्या तो परिश्रम से ही प्राप्त कर सकेगा। इसी तरह धन से भोजन खरीद सकता है, भूख नहीं खरीद सकता। ऐसे भी मनुष्य संसार में हैं जिनके पास लाखों करोड़ों रुपये की सम्पत्ति है किन्तु आध पाव दूध चावल भी हजम नहीं

कर सकते। अब बताओ धन में सुख कहाँ है ? यदि भोजन में सुख माना जाय, तो चार रोटी खाने में जो सुख मिलता है, सोलह रोटी खाने में चौगुना सुख मिलना चाहिये। क्योंकि सुख जब रोटी का धर्म है तो रोटी की वृद्धि के साथ २ सुख की मात्रा भी बढ़नी चाहिये। परन्तु होता यह है कि भूख से यदि अधिक भोजन किया जाता है तो पेट में दर्द हो जाता है, और डाक्टर या वैद्य की आवश्यकता पड़ने लगती है, भूख के अन्दर रूखा सूखा भोजन भी अमृत के समान प्रतीत होता है। भूख न होने पर अमृत भी स्वाद नहीं आता। इसी तरह वस्त्रों को लो। यदि वस्त्रों में सुख माना जाय तो जाड़े में ऊन और रुई के मोटे २ वस्त्र जो सुखदायक प्रतीत होते हैं, गर्मी में भी वे ही वस्त्र वैसे ही सुखदायक प्रतीत होने चाहिये और जो वस्त्र गर्मी में सुखदायक प्रतीत होते हैं वे सर्दी में भी वैसे ही प्रतीत होने चाहिये। जब सुख वस्त्रों का धर्म है तो प्रत्येक समय उनसे सुख ही मिलना चाहिये। क्या कारण है, गर्मी के वस्त्र सर्दी में और सर्दी के वस्त्र गर्मी में आराम नहीं देते ! जो जिसका धर्म है वह प्रत्येक समय एक जैसा ही रहना चाहिये। जैसे अग्नि का धर्म जलाना है, उसे किसी भी समय छुओ, फौरन जलाएगी। मिश्री का धर्म मीठापन है किसी भी समय खाओ मीठी प्रतीत होगी। इसी प्रकार यदि संसार के पदार्थों का धर्म सुख देना हो तो संसार के पदार्थ प्राप्त करने पर मनुष्य सुख की खोज न करते। उन्हें तो प्रत्येक समय सुख का अनुभव होना चाहिये था। भला बताओ तो सही एक मनुष्य जिसे १०५ डिग्री का बुखार चढ़ा हुआ है उसको रेशम की डोरी से बने हुए, मखमल बिछे हुए, सोने के पलंग पर लिटा देने से उसके दुःख में कोई कमी हो सकेगी ? कदापि नहीं। इसलिए मैं कहता हूँ सुख संसार के पदार्थों में नहीं, सुख का भण्डार केवल परमात्मा ही है।

कमल—यदि संसार के पदार्थों में वास्तव में सुख नहीं, अपने अन्दर है तो लड्डू या जलेबी खाने पर आनन्द क्यों आता है ? मिट्टी खाने से क्यों नहीं आता ! रोटी खाने में आनन्द क्यों आता है, पत्थर

खाने से क्यों नहीं आता ? क्या कारण है मिश्री खाने से आनन्द आता है, घास खाने से नहीं ? क्या कारण है किसी सुन्दर दृश्य को देखने से आनन्द आता है, श्मशान को देखने से नहीं ?

विमल—लड्डू, जलेबी, मिश्री आदि जितनी भी खाने योग्य पदार्थ हैं उन्हें खाने पर उन्ही के गुणों का अनुभव होता है, आनन्द का नहीं। जैसे मिश्री खाई तो मिठास मालूम दी और मिर्च खाई तो कड़वाहट मालूम दी। अब न तो कड़वाहट का नाम आनन्द है, न मिठास का। जिस चीज में मनुष्य के चित्त की एकाग्रता हो गई, उसमें उसने आनन्द समझ लिया। यदि मिश्री में आनन्द होता तो ज्वर की अवस्था में भी आनन्द देती, परन्तु ज्वर की अवस्था में मिश्री बे-स्वाद प्रतीत होती है। इसी प्रकार मिर्च के खाने का जिसे अभ्यास नहीं है, उसे मिर्च जहर के समान लगती है। यही अवस्था संसार के अन्य पदार्थों की है। रही यह बात कि मिट्टी खाने से आनन्द क्यों नहीं आता ? मिट्टी खाने से भी आनन्द आता है, अगर उसमें चित्त की एकाग्रता हो जाय। बहुत से भाइयों और बहनों को मैंने कच्चे मिट्टी के सकोरे और चिकनी मिट्टी खाते देखा है। बहुत से ज़ानवर कंकड़ और पत्थर खाते हैं। कंकड़-पत्थर को जाने दो। शराब जैसी दुर्गन्ध युक्त तीखी और कसैली तथा अफीम जैसी कड़वी वस्तु में लोग आनन्द मानते हैं। परन्तु क्या वह आनन्द उन पदार्थों में है ? नहीं। आनन्द तो उन्हें मिलता है, उन्हीं के चित्त की एकाग्रता से। ज़ितनी देर चित्त में एकाग्रता रहती है उतनी देर तक आनन्द भी रहता है। प्रश्न हो सकता है, किसी पदार्थ में चित्त की एकाग्रता कैसे होती है ? उत्तर यह है कि किसी भी चीज का मनुष्य जब अभ्यासी हो जाता है, तो उस चीज में उसको क्षणिक एकाग्रता होने ही लगती है क्योंकि अभ्यास करते-करते मन पर उस वस्तु के संस्कार पड़ जाते हैं और वे संस्कार बार २ मनुष्य को उसी वस्तु के प्रयोग के लिये प्रेरित करते हैं। यही बात किसी सुन्दर दृश्य को देखने की है। मनुष्य अपना मन प्रसन्न करने के लिए नदी, समुद्र, वन-उपवन तथा पहाड़ों का भ्रमण करने

जाता है। लेकिन अगर उसके पीछे कोई भयङ्कर मुकदमा हो, तो उसे किसी स्थान पर आनन्द नहीं आता। सारे स्थान श्मशान के समान प्रतीत होते हैं। क्योंकि मुकदमे की चिन्ता के कारण उसके मन में एकाग्रता नहीं। एक मनुष्य आकर्षक दृश्य, सङ्गीत गायन आदि का आनन्द लेने सिनेमा जाता है, परन्तु घर में उसका प्यारा पुत्र बीमार है। वह सिनेमा देख रहा है, फिर भी उसे आनन्द नहीं आता। क्यों ? इसलिए कि पुत्र के रोग-ग्रस्त होने के कारण उसके चित्त में एकाग्रता नहीं होती। और देखो ! यदि मैं तुम्हें इस समय स्वादिष्ट लड्डू खाने को दूं, और तुम उसे खाने लगो, परन्तु मैं एक काम करूँ तुम्हारा ध्यान किसी दूसरी ओर कर दूं, तो तुम सारा लड्डू खा जाओगे, परन्तु उसका स्वाद तुम्हें मालूम ही नहीं देगा। प्रायः ऐसा होता भी है, मनुष्य किसी पदार्थ को खा जाता है परन्तु ध्यान दूसरी ओर होने के कारण वह उसका दोष-गुण ज्ञान ही नहीं पाता है। अतएव सिद्ध हुआ कि सुख बाहर के पदार्थों में नहीं केवल चित्त की एकाग्रता में है।

कमल—तुम तो कहते थे सुख का भण्डार परमात्मा है, अब कहते हो, सुख चित्त की एकाग्रता में है, यह दो तरह की बातें क्यों ?

विमल—चित्त की एकाग्रता में ही सुख स्वरूप परमात्मा का अनुभव होता है उसी से सुख मिलता है। अज्ञानी मनुष्य समझता है कि सुख बाहर के पदार्थों से मिल रहा है। ये दो तरह की बातें नहीं हैं। बात एक ही है, परन्तु है जरा गहराई से सोचने की चीज। संसार के पदार्थों में अभ्यास के कारण क्षणिक एकाग्रता होती है, इसलिए क्षणिक आनन्द मिलता है यदि पूर्ण रूपेण भगवान् की भक्ति में मन एकाग्र करने का अभ्यास किया जाय तो अन्त में परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है, जो मानव जीवन का लक्ष्य है। इसीलिए ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना की आवश्यकता है ताकि चित्त अधिक से अधिक एकाग्र हो, और अधिक से अधिक आनन्द मिले।

कमल—इसका क्या प्रमाण है, कि जितना चित्त अधिक एकाग्र होगा, उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा ?

विमल—इसका प्रभाव मैं तुम्हें जागृत और सुषुप्ति अवस्था से देता हूँ। देखो, जागने की हालत में मनुष्य की वृत्तियाँ संसार के पदार्थों की ओर फैली रहती हैं। कभी मन किसी पदार्थ की ओर जाता है कभी किसी पदार्थ की ओर। इस कारण उसमें स्थिर एकाग्रता उत्पन्न नहीं होगी। लेकिन सोने की हालत में उसके मन की वृत्तियाँ नितान्त एकाग्र हो जाती हैं, तब उसे बड़ा आनन्द आता है। प्रात:काल उठकर कहता है—"मैं बड़े सुख से सोया बड़ी नींद आई।" उसे सोने से जो आनन्द मिला वह चित्त की एकाग्रता के कारण मिला क्योंकि आत्मा का प्रकृति के पदार्थों से सम्बन्ध छूट जाने के कारण परमात्मा से सम्बन्ध हो गया। जीवात्मा का सम्बन्ध या तो परमात्मा से होता है या प्रकृति से होता है। जितना अधिक सम्बन्ध प्रकृति से होगा, उतना ही दुख बढ़ता जायगा। जितना अधिक परमात्मा से सम्बन्ध होगा, उतना ही सुख बढ़ता चला जायगा। एक मनुष्य जेलखाने में पड़ा हुआ है। बुखार में पीड़ित है, पेट में एक फोड़ा उठा हुआ है। लाखों रुपये का कर्जदार है, घर में आग लग गई है, स्त्री-पुत्र का देहान्त हो गया। तात्पर्य यह है कि वह अनेक दुःखों और चिन्ताओं से ग्रसित है। ये चिन्तायें और दुःख कब तक हैं ? जब तक वह जाग्रत अवस्था में है परन्तु यदि वह किसी प्रकार सो जाता है, तो उसके सारे दुःख और चिन्तायें छूट जाती हैं। उस समय जो आनन्द एक राजा को आता है वही उसे आता है। मनुष्य ही नहीं सुषुप्ति अवस्था में प्रत्येक प्राणी को आनन्द आता है। क्योंकि उस समय मन की वृत्तियाँ फैली हुई नहीं होतीं। एक स्थान पर एकत्रित होती हैं। चित्त की वृत्तियों की एकाग्रता का नाम ही 'योग' अर्थात् परमात्मा से मेल है। सुषुप्ति अवस्था में तो जीवात्मा का बिना ज्ञान के ईश्वर से मेल होता है। परन्तु स्तुति, प्रार्थना और उपासना द्वारा जब ज्ञानपूर्वक परमात्मा से मेल होता है तो उसको आत्मिक उन्नति

कहा जाता है। और यह उन्नति समाधि द्वारा पराकाष्ठा पर पहुँच कर जीवात्मा को परमात्मा में तन्मय करा देती है, जो जीवन का उद्देश्य है।

कमल—स्तुति, प्रार्थना, उपासना, किसे कहते हैं ?

विमल—श्रद्धापूर्वक ईश्वर के गुणों का वर्णन करना, 'स्तुति' उन्हीं गुणों से अपने दोषों को सुधारने के लिये ईश्वर से सहायता माँगने का नाम 'प्रार्थना' संसार के पदार्थों से अहङ्कार का भाव हटा कर मेरे समीप परमात्मा और मैं परमात्मा के समीप हूँ, ऐसी दृढ़ धारणा बनाने का नाम 'उपासना' है।

कमल—मित्र ! आप ईश्वर को शरीर से रहित मानते हैं। परन्तु संसार के बहुत से लोग ईश्वर को शरीरधारी मानते है और उसकी भक्ति करते हैं। मैं पूछता हूँ, यदि ईश्वर को शरीरधारी अथवा साकार माना जाय तो उसमें दोष क्या है ?

विमल—इस प्रश्न का उत्तर कल दिया जायेगा।

—*—

चौथा दिन ; प्रातःकाल

ईश्वर साकार क्यों नहीं ?

कमल—मित्र, कल के प्रश्न का उत्तर दो।

विमल—तुम्हारा कल का प्रश्न था कि ईश्वर को साकार माना जाय तो क्या दोष है ? अच्छा सुनो ! ईश्वर को साकार मानने में एक दोष नहीं अनेकों दोष हैं। देखो, ईश्वर का लक्षण सच्चिदानन्द है। इसमें तीन पद हैं—सत्, चित् और आनन्द। सत् का अर्थ है भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों में एक रस रहने वाला दूसरे शब्दों में जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो सके वह सत् है। ज्ञान वाले को 'चित्' कहते हैं और तीनों कालों में दुःख के नितान्त अभाव का नाम 'आनन्द' है। ईश्वर सच्चिदानन्द इसलिये है कि उसमें

परिवर्तन कभी नहीं होता। उसका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता और न कभी उसमें दुःख व्याप्त होता है। संसार के जितने भी साकार पदार्थ हैं, उन सब में परिवर्तन होता है इसलिये वह 'सत्' नहीं। 'चित्' तो केवल आत्मा अथवा परमात्मा ही है, जो कि निराकार हैं। कोई भी साकार या शरीरधारी दुःख से बच नहीं सकता। तीनों काल इसमें आनन्द नहीं रह सकता। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, भय, शोक रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि प्रत्येक साकार या शरीरधारी को सताते हैं। ईश्वर इन दोनों से सर्वथा अलग है। अतः ईश्वर को साकार मानने में पहिला दोष यह आता है कि वह 'सच्चिदानन्द' और निर्विकार' नहीं रहता। क्योंकि प्रत्येक साकार पदार्थ में जन्म, वृद्धि, क्षय, जरा, मृत्यु आदि विकार मौजूद हैं। दूसरा दोष साकार मानने में यह है— ईश्वर 'सर्वव्यापक' नहीं रहता। क्योंकि प्रत्येक साकार पदार्थ एकदेशी अर्थात् एक जगह रहने वाला होता है। तीसरा दोष यह आता है— ईश्वर 'अनादि' और 'अनन्त' नहीं रहता क्योंकि प्रत्येक साकार या शक्ल वाला पदार्थ उत्पन्न होता है इसलिए उसका आदि होता है, वह अनादि नहीं होता, और न अनन्त होता है। जिसका आदि है उसका अन्त अवश्य है। जो उत्पन्न होगा वह नष्ट अवश्य होगा। जिसका एक किनारा है, उसका दूसरा किनारा होता ही है। चौथा दोष यह आता है—ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहता। क्योंकि जब साकार होगा तो एक जगह होगा, सब जगह नहीं। जब सब जगह नहीं होगा तो सब जगह का ज्ञान भी नहीं होगा। एक जगह का होगा। फलतः ईश्वर 'अन्तर्यामी' भी न रहेगा, क्योंकि वह प्रत्येक के मन की बात नहीं जान सकेगा। पाँचवा दोष यह आता है-ईश्वर नित्य नहीं रहता अनित्य हो जाता है। नित्य उसे कहते हैं कि पदार्थ हो परन्तु उसका कारण कोई न हो। वह किसी के मेल से बना हुआ न हो। साकार पदार्थ तत्वों के मेल से बना हुआ होता है।

छठा दोष यह आता है—परमात्मा, सर्वाधार, नहीं रहता 'पराधार' हो जाता है। परमात्मा 'सर्वाधार' इसलिए है कि सारा

संसार उसी के सहारे चल रहा है। सारे ब्रह्माण्ड को उसी ने धारण किया है। यदि परमात्मा को साकार माना जाय, तो वह किसी न किसी के सहारे रहेगा। यही कारण है कि मतवादियों ने ईश्वर को साकार मान कर उसके स्थान नियत किये हैं। किसी ने सातवाँ आसमान, किसी ने चौथा आसमान, किसी ने क्षीर सागर, किसी ने गोलोक, किसी ने बैकुण्ठलोक आदि स्थान उसके रहने के बतलाये हैं। जिस परमात्मा के आधार पर सारा जगत् है, लोगों ने उसे साकार मानकर जगत् को उसका आधार बना दिया। जब परमात्मा ही जगत् के सहारे हो गया तो फिर जगत् किसके सहारे रहेगा ? इसी प्रकार और भी बहुत से दोष साकार मानने में आते हैं।

कमल—विद्वानों का मत है कि ईश्वर निराकार तो है, परन्तु समय २ पर अवतार धारण कर साकार हो जाता है। जैसे भाप निराकार है लेकिन समय पर जम कर बादल या बर्फ बन जाती है। 'अग्नि' सर्वव्यापक है, निराकार है, परन्तु समय पर स्थूल रूप में प्रकट हो जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। जब संसार के भौतिक पदार्थ निराकार से साकार हो जाते हैं तो परमात्मा निराकार से साकार क्यों नहीं हो सकता ?

विमल—भाप और अग्नि का जो उदाहरण तुमने दिया है वह ठीक प्रतीत नहीं होता। जरा गहराई से सोचो। 'भाप' और 'अग्नि' एक पदार्थ नहीं हैं, किन्तु अनेक परमाणुओं के समुदाय हैं, जल के असंख्य छोटे-छोटे परमाणु भाप बन जाते हैं, वे ही परमाणु पुनः स्थूल होकर बादल, बर्फ और जल का रूप धारण कर लेते हैं। भाप यदि केवल एक ही परमाणु होती और एक रस होती तो वह कभी स्थूल नहीं हो सकती थी। यही 'अग्नि' के परमाणुओं की अवस्था है, वे अनेक होने के कारण वे परस्पर में मिलकर स्थूल हो जाते हैं, और अग्नि का प्रचण्ड रूप धारण कर लेते हैं। यह कहना कि अग्नि सर्वव्यापक और निराकार है, भयङ्कर भूल है। 'अग्नि' पृथ्वी और जल से सूक्ष्म है इसलिए पृथ्वी और जल में तो व्यापक मानी जा

सकती है, परन्तु आकाश और वायु से नहीं। हाँ, आकाश और वायु यह दोनों ही अग्नि में व्यापक हैं, क्योंकि यह दोनों अग्नि से सूक्ष्म हैं। सूक्ष्म पदार्थ स्थूल में व्यापक होता है। जिन२ पदार्थों में अग्नि व्यापक है, वे सब पदार्थ रूप वाले हैं। संसार में जो भी रूप नजर आता है वह सब अग्नि को व्यापकता के कारण है। क्योंकि अग्नि का गुण ही रूप है। अतएव सिद्ध हुआ—भौतिक पदार्थ सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से सूक्ष्म इसलिए हो जाते हैं, कि वे अनेक परमाणुओं से मिलकर बने हुए होते हैं। परमात्मा सर्वव्यापक, एक और एक रस है। अतः वह निराकार से साकार नहीं हो सकता। रहा यह प्रश्न कि ईश्वर समय २ पर अवतार धारण करता है। यह सिवाय कोरी कल्पना के और कुछ नहीं है। देखो ! अवतार शब्द का अर्थ है—'उतरना अथवा जिसमें उतरें। 'उतरने और चढ़ने' का व्यवहार एकदेशी अर्थात् एक स्थान पर रहने वाले पदार्थ में हो सकता है 'सर्वव्यापक' में नहीं हो सकता। सर्वव्यापक का आना-जाना, चढ़ना-उतरना सर्वथा असम्भव है। जो सब जगह है. वह कहाँ से आयेगा और कहाँ जायेगा ?

कमल—क्या, रावण, कंस, हिरण्यकश्यपु आदि दुष्टों को मारने के लिये ईश्वर का अवतार नही हुआ ? और क्या भविष्य में दुष्टों के दमन के लिये ईश्वर अवतार नहीं होगा ? मैंने सुना है कि जब २ धर्म की हानि होती है, तब २ अवतार होता है।

विमल—ईश्वर का अवतार न कभी हुआ है, और न कभी होगा। समय २ पर जो महान् पुरुश उत्पन्न हुए हैं, जिन्होने दुष्टों का दमन किया है या जनता को ठीक रास्ता दिखलाया है, लोगों ने इन्हें तरह २ की उपाधियाँ प्रदान की हैं। किसी ने उन महान् पुरुषों को 'नबो' माना, किसी ने ईश्वर का बेटा माना। किसी ने ईश्वर का अवतार माना, किसी ने उन्हें साक्षात् ईश्वर माना। परन्तु वे सब के सब थे मनुष्य ही। जरा विचारो तो सही, जो ईश्वर बिना शरीर के शरीरधारी प्राणियों को उत्पन्न कर सकता है, क्या वह ईश्वर

बगैर शरीर के शरीरधारी प्राणियों को मार नहीं सकता ? आज भी संसार में असंख्य प्राणी पैदा हो रहे हैं, और मर रहे हैं। क्या ईश्वर शरीर धारण करके उनकी उत्पत्ति और विनाश कर रहा है ? ईश्वर के एक ही भूकम्प से लाखों प्राणी मर जाते हैं। एक ही तूफान में नगर के नगर विध्वंस हो जाते हैं। एक ही प्लेग, महामारी, हैजा आदि रोग में लाखों मनुष्यों का संहार हो जाता है। भला यह क्या बात हुई कि तुच्छ प्राणियों को मारने के लिए ईश्वर अवतार लेता है। उसके सामने रावण, कंसादिक चीज ही क्या हैं ? जो परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय और स्थिति बिना शरीर के करता है, उसके लिये यह कहना कि दुष्टों को मारने के लिये अवतार लेता है, सर्वथा हँसी और उसके घोर अपमान की बात है। "जब २ धर्म की हानि होती है तब २ ईश्वर का अवतार होता है" यह कहना भी भूल से खाली नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि अवतार के मानने वाले प्रायः इसी बात को ज्यादा कहा करते हैं। लेकिन यह बात उन्हीं के सिद्धान्त से खण्डित हो जाती है। देखो ! अवतारवादी मुख्य दस अवतार मानते हैं और चार युग मानते है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। 'सत्ययुग' में चारों चरण धर्म के मानते हैं। 'त्रेता' में तीन-चरण धर्म के और एक चरण पाप का मानते हैं। 'द्वापर' में दो चरण धर्म के और दो चरण अधर्म के अर्थात् आधा पुण्य और आधा पाप मानते हैं। कलियुग में तीन चरण पाप के और एक चरण पुण्य का मानते हैं। अब जरा अवतारों के क्रम पर विचार करो। सत्ययुग में चार अवतार मानते हैं, त्रेता में तीन और द्वापर में दो मानते हैं, कलियुग में एक अवतार होना मानते है, जो निष्कलंक भगवान् के रूप से अन्त में प्रकट होगा। अब सोचने की बात यह है कि जब सत्ययुग में चारों चरण धर्म के हैं, अधर्म है ही नहीं, तो चार अवतार किस प्रयोजन के लिए ? त्रेता युग में जब धर्म के तीन चरण रहे, तो एक अवतार कम क्यों हो गया, तीन ही अवतार क्यों रहे ? द्वापर में जब आधा पुण्य और आधा पाप रहा, तो अवतार दो ही क्यों रह गये ?

और कलियुग में जब एक ही चरण धर्म का रहा, तीन चरण अधर्म के हो गये तो अवतार एक ही क्यों रहा ? और वह भी कलियुग के अन्त में जाकर क्यों होगा ? होना तो यह चाहिए था, अधर्म की वृद्धि के साथ २ अवतारों की संख्या भी बढ़ती जाती, परन्तु हुआ यह कि ज्यों-ज्यों अधर्म संख्या में बढ़ता गया, त्यों २ अवतार कम होते गये। अब बताओ, धर्म की हानि के साथ २ अवतारों का सम्बन्ध क्या रह गया ?

कमल—उन्होंने बड़े २ चमत्कार दिखाये, जो मनुष्य नहीं दिखा सकता। जैसे गोवर्धन पहाड़ को उँगली पर उठाना आदि २। इससे मानना पड़ता है कि वे लोग ईश्वर के अवतार थे।

विमल—प्रथम तो यह बात गलत है कि किसी ने उँगली पर पहाड़ उठाया। यदि दुर्जनतोष न्याय से इसे सही भी मानलें तो इसमें ईश्वर या ईश्वर के अवतार की कोई महत्ता प्रकट नहीं होती। तुम कहोगे क्यों ? इसलिए कि जो ईश्वर सूर्य, नक्षत्र आदि ग्रहों और उपग्रहों को अपनी शक्ति से धारण किये हुये है उसके सामने गोवर्धन आदि पहाड़ राई के तुल्य भी तो नहीं हैं। जिस पृथ्वी पर हम तुम रहते हैं उस पर लाखों छोटे-बड़े पहाड़ हैं, उस पृथ्वी को ही परमात्मा ने धारण किया हुआ है तो गोवर्धन पहाड़ बेचारा है किस गिनती में ? यदि ईश्वर या ईश्वर का अवतार होकर किसी ने गोवर्धन पहाड़ उठा भी लिया तो इसमें कौनसी बहादुरी की बात हो गई ? अगर एम० ए० के किसी विद्यार्थी ने दूसरी या तीसरी श्रेणी का कोई सवाल हलकर दिया तो क्या उसने कोई तीर मार दिया ? हाँ दूसरी तीसरी श्रेणी का बालक होकर यदि एम० ए० का सवाल कर देता है तो वास्तव में उसकी प्रशंसा की बात है। इसी तरह मनुष्य होकर यदि किसी ने पहाड़ उठा लिया होता, तो वास्तव में एक चमत्कार की बात कहलाती, क्योंकि मनुष्य से यह आशा न थी, जो उसने करके दिखा दिया लेकिन ईश्वर का अवतार होकर जब

पहाड़ उठाया तो इसमें न कोई चमत्कार है, और न इसमें उसकी कोई महानता है।

कमल—अगर तुम्हारे विचार से ईश्वर का अवतार नहीं होता, तो वह सर्वशक्तिमान् कैसे माना जायगा ? जब ईश्वर होकर अवतार भी नहीं ले सकता, तो उसमें सर्वशक्तिमानपन रहा कहाँ ? सर्वशक्तिमान् तो वही है जो सब कुछ कर सकता हो।

विमल—मित्र, तुमने विचार नहीं किया, ईश्वर अवतार लेने से सर्वशक्तिमान् रहता ही नहीं, अल्प शक्तिमान् हो जाता है। यदि कहो कैसे ? सुनो, जो परमात्मा शरीर धारण करने से पहले बिना हाथों के कार्य कर रहा था, अब वह हाथों से कार्य करेगा। पहले बिना नेत्रों के देख रहा था, अब नेत्रों से देखेगा। पहले बिना कानों के सुन रहा था अब वह कानों से सुनेगा। तात्पर्य यह है अवतार लेने के पूर्व अपने सारे कार्य बिना शरीर के कर रहा था, अब शरीर का मुहताज बन के काम करेगा। जब दूसरे का मुहताज या अधीन बना तो 'सर्वशक्तिमान्' रहा कहाँ ? जैसे अल्पज्ञ जीवात्मा अपने काम करने में शरीर का मुहताज है, वैसे ही परमात्मा भी शरीर का मुहताज बन गया। फिर मनुष्य और ईश्वर में अन्तर ही क्या रहा ? जैसे मनुष्य को भूख, प्यास सर्दी-गर्मी सताती है वैसे ही शरीरधारी परमात्मा को भी सतायेगी। जैसे राग-द्वेष ज्वर पीड़ादि मनुष्य में होते हैं, वैसे ही ईश्वर में भी होंगे। सबसे बड़ा दोष तो यह है—ईश्वर अवतार लेते ही पराधीन हो जाता है, स्वाधीन रहता ही नहीं। कहीं उसे भोजन की आवश्यकता होती है, कहीं जल की और कहीं वस्त्रों की। और कहीं रहने के स्थान की आवश्यकता होती है। समस्त काम अपनी शक्ति से करने वाला जब शरीर की सहायता से काम करने लगा, तो वह सर्वशक्तिमान् माना ही कैसे जायगा ? यदि एक मनुष्य दूसरे को अपने नेत्रों की आकर्षण शक्ति से बेहोश कर देता है और दूसरा मनुष्य दवा खिलाकर बेहोश करता है, अब बताओ दोनों में ताकतवर कौन है। ताकतवर तो वह है, जो नेत्रों की शक्ति से बेहोश करता है।

क्यों ? इसलिए कि वह दूसरे को बेहोश करने में दवा का मुहताज नहीं।

अब तुम अच्छी तरह समझ गये होंगे, ईश्वर सर्वशक्तिमान् तभी हो सकता है, जब अवतार धारण न करे। तुम्हारा जो यह विचार है कि सर्वशक्तिमान् सब कुछ कर सकता है, सिवाय भ्रान्ति के और कुछ नहीं है। सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ तो यह है कि उसमें सर्वशक्तियाँ हैं। वह संसार के सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ को मिला सकता है, और पृथक कर सकता है। समस्त जीवों को कर्मानुसार फल दे सकता है, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कर सकता है, और उसको नियम में चला सकता है। तात्पर्य यह है परमात्मा अपने काम करने में दूसरे का सहारा नहीं लेता यही ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता है। सर्वशक्तिमान् का यह अर्थ कभी नहीं होता कि वह असम्भव को सम्भव कर सकता है।

कमल—क्या ईश्वर असम्भव को सम्भव नहीं कर सकता ? यदि नहीं कर सकता तो वह ईश्वर ही नहीं है।

विमल—असम्भव को सम्भव न करना, नियम को अनियम न करना ही ईश्वर की ईश्वरता है। यदि तुम समझते हो, कि ईश्वर असम्भव को सम्भव कर सकता है तो मैं पूछता हूँ, बताओ ईश्वर अपने को नष्ट कर सकता है या नहीं ? ईश्वर अपने समान दूसरा ईश्वर बना सकता है, या नहीं ?

कमल—ईश्वर अपने को चाहे नष्ट न करे, पर अपने समान दूसरा ईश्वर अवश्य बना सकता है, जबकि वह सर्वशक्तिमान् है।

विमल—नहीं मित्र, ईश्वर अपने समान दूसरा ईश्वर नहीं बना सकता। तुम कहोगे क्यों ? अच्छा सुनो, कल्पना करो आज ईश्वर ने दूसरा ईश्वर बना लिया है। अब विचारना यह है, क्या बना हुआ ईश्वर, ईश्वर के समान हो गया ? हर्गिज नहीं। तुम कहोगे क्यों नहीं हुआ ? इसलिए नहीं हुआ कि एक ईश्वर तो पुराना रहा दूसरा नया रहा। एक अनादि रहा, दूसरा सादि रहा। दूसरे शब्दों में एक नया बना हुआ रहा, दूसरा बे बना हुआ रहा। एक में आयु का सम्बन्ध

नहीं क्योंकि वह नित्य है दूसरे की आयु आज से आरम्भ हुई, क्योंकि बनाया गया है। ईश्वर व्यापक रहा, बना हुआ ईश्वर व्याप्य रहा, क्योंकि दोनों व्यापक तो हो ही नहीं सकते। यदि कहो आधे आधे व्यापक हो गये तो दोनों सर्वव्यापक न रहे। जब सर्वव्यापक न रहे तो दोनों ही ईश्वर न रहे। अतः सर्वशक्तिमान् का यह अर्थ हो नहीं है कि ईश्वर सब कुछ कर सकता है। ईश्वर वही कर सकता है, जो ईश्वर को करना चाहिए।

कमल—यदि ईश्वर का अवतार मान लें तो इसमें हानि क्या होती है ?

विमल—जब ईश्वर का अवतार होता ही नहीं, फिर उसको मान लेना सत्य का गला घोटना है, यही एक बड़ी हानि है। दूसरी हानि यह है कि सारे संसार की उन्नति करने वाला परमात्मा अवनति को प्राप्त हो जाता है। क्यों ? इसलिए कि वह नारायण से नर बनता है ! नर से नारायण बनना उन्नति का सूचक कहा भी जा सकता है, परन्तु नारायण से नर बनना तो सरासर अपने पद से नीचे गिरना है। कोई रंक यदि राजा हो जाता है तो वास्तव में उसकी उन्नति हुई है। परन्तु राजा से रंक हो जाने को उन्नति का चिन्ह कौन मानेगा, सिवाय भोलों के ? तीसरी हानि यह है कि हर एक पाखण्डी अपने को ईश्वर का अवतार कहने लगता है और भोले भाले स्त्री पुरुषों को अपने जाल में फँसाकर उनका धर्म-कर्म नष्ट कर देता है। उन्हें चेले और चेलियाँ बनाकर उनसे धन लेकर खूब मौजें उड़ाता है। भारतवर्ष में कई ऐसे पाखण्डियों के उदाहरण मौजूद हैं, जिन्होंने अपने को अवतार घोषित किया और स्त्रियों तथा पुरुषों के धर्म और धन को खूब नष्ट किया। चौथी हानि अवतार को मानने से यह है कि लोग अत्याचार के सहने वाले हो जाते हैं। जब दुष्ट और पापी अत्याचार करते हैं, बहन-बेटियों की इज्जत खराब करके सम्पत्ति लूट ले जाते हैं, मकानों और दुकानों में आग लगा देते हैं तो अवतारवादी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। वे अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार

(मुकाबिला) नहीं करते । वे सोचते है, अन्याय अधर्म का रोकना हमारे वश की बात नहीं है । जब भगवान् अवतार धारण करेंगे, तभी दुष्टों का संहार होगा, तभी धर्म की स्थापना हो सकेगी, तभी पाप दूर होगा और तभी पृथ्वी का भार हल्का होगा । वास्तव में यह एक महान् कायरता है, जो ईश्वर का अवतार मानने के कारण ही लोगों में उत्पन्न हुई है । जिन जातियों में ईश्वर का अवतार नहीं माना जाता वे जातियाँ अपने दुश्मनों से स्वयं कसकर बदला लेती हैं । वे कभी नहीं सोचतीं कि अन्यायी और अत्याचारियों को मारने के लिये ईश्वर का अवतार होगा । वे समझती हैं, जैसे हाथ पाँव भगवान् ने इन अत्याचारियों को दिये हैं वैसे ही हमें भी दिये हैं, इसलिये वे जातियाँ दुश्मन से डटकर मुकाबिला करती हैं । वे अपना करने का काम ईश्वर पर नही छोड़तीं । मित्र कमल, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ इस अवतार के सिद्धान्त ने आर्य जाति को बहुत पतित और पद-दलित किया है । इसने आत्मविश्वास (Self confidence) को जाति से सर्वथा निर्वासित कर दिया है ।

कमल—मित्र, तुम्हारी युक्तियों का प्रभाव तो मुझ पर बहुत पड़ा है, अब यह बताओ कि जब ईश्वर निराकार है तो हम उसका ध्यान कैसे करें ?

विमल–परमात्मा की कृपा है जो तुम्हारे ऊपर सत्य सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा है जो प्रश्न अब तुमने किया है इस पर विचार कल किया जायगा ?

पाँचवाँ दिन : प्रातःकाल

ईश्वर का ध्यान कैसे हो ?

कमल—लो मित्र मैं नियत समय पर आ गया, कल का प्रश्न हल करो। जब ईश्वर निराकार है तो उसका ध्यान कैसे हो ?

विमल–ध्यान दो तरह का होता है, एक तो संसार के प्राणियों और संसार के पदार्थों का ध्यान, दूसरा सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता इन्द्रियों से परे परम प्रभु परमात्मा का ध्यान। संसार से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का ध्यान तो उन्हें देखकर अथवा उनके वियोग होने पर होता है। जैसे एक भाई को मैंने कलकत्ते में देखा उससे परिचय हो गया। फिर पाँच छः साल के पश्चात् मैंने उसे बम्बई में देखा। अब मुझे ध्यान आया कि यह वही भाई है, जो मुझे कलकत्ते में मिले थे। दूसरे वियोग होने पर ध्यान होता है—जैसे मेरे एक मित्र जिससे मुझे अत्यन्त प्रेम है—कहीं बाहर भ्रमण करने चले गये। अब मुझे उनका बार-बार ध्यान आता है कि न जाने वह इस समय कहाँ होंगे ? जब तक हम दोनों एक दूसरे को देखते रहते थे तब तक ध्यान का कोई सम्बन्ध ही नहीं था, क्योंकि जो चीज सामने है उसका ध्यान कैसा ? जब उससे वियोग हुआ, तब उसका ध्यान आने लगा। यह तो रही साँसारिक वस्तुओं के ध्यान की बात। ईश्वर के ध्यान की बात इससे सर्वथा भिन्न है। ईश्वर के ध्यान का अर्थ है— मन को निर्विषय करना, अर्थात् मन और इन्द्रियों में फैली हुई आत्मा की शक्तियों को आत्मा में ही एकत्र करना। जब तक मन और इन्द्रियाँ संसार के विषयों की ओर लगीं हुई हैं तब तक ईश्वर का ध्यान आत्मा कर ही नहीं सकता। ईश्वर का ध्यान करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि मन और इन्द्रियों को अभ्यासपूर्वक विषयों की ओर जाने से रोका जाय। यह याद रखना चाहिए–'ध्यान योग के आठ अङ्गों में सातवाँ अङ्ग है। पहिले यम नियम, आसन,

प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा इन छः अंगों का पालन करना आवश्यक है तब कहीं जाकर मनुष्य 'ध्यान' का अधिकारी बनेगा। जब नियमानुसार छः अंगों का पालन हो जायगा तब ध्यान तो अपने आप लगने लगेगा। जब ध्यान छः अङ्गों के पश्चात् है तो मूर्ति के द्वारा पहले ही कैसे हो जायगा ?

कमल—मित्र, मन बड़ा चंचल है, यह निराकार में लग कैसे सकता है ? इसको लगाने के लिये साकार पदार्थ का सहारा चाहिये। विना साकार पदार्थ के मन में स्थिरता हो नहीं सकती।

विमल—प्यारे और भोले मित्र ! मन तो स्थिर होता ही निराकार में है, साकार में तो स्थिर हो ही नहीं सकता। क्योंकि साकार पदार्थ शब्द, स्पर्श रूप, रस आदि विषयों वाले होते हैं इस कारण उन विषयों में फँसकर मन चंचल रहता है। यदि साकार पदार्थों में मन स्थिर होता, तो सारा संसार ही साकार है, सबका मन स्थिर हो गया होता। परन्तु ऐसा नहीं हैं। ज्यों २ सांसारिक पदार्थों में मन फँसता जाता है त्यों २ मानसिक चंचलता और अधिक बढ़ती जाती है। यदि गहराई से विचार करो तो मालूम होगा कि मन स्थिर नहीं हुआ करता। मन का स्थिर होना तो मृत्यु है। मन या हृदय की गति के बन्द हो जाने का नाम ही तो मृत्यु है। मन टिका नहीं कि मनुष्य मरा नहीं, वास्तव में मन की वाह्य वृत्तियों का अन्तर्मुखी हो जाना ही मानसिक स्थिरता है। जब तक मनुष्य जीवित है मनुष्य का मन गतिशील ही रहेगा।

कमल—तो क्या जो लोग मूर्ति द्वारा ईश्वर का ध्यान करते हैं, भूल में हैं। मेरा विचार तो यह है कि—मूर्ति द्वारा मन की चंचलता दूर हो सकती है। इसलिये मनुष्य राम, कृष्ण आदि की मूर्तियाँ पूजते हैं।

विमल—मूर्ति के द्वारा ईश्वर का ध्यान कभी भी नहीं हो सकता। मैं पहिले कह चुका हूँ कि ध्यान का अर्थ है—मन का

निर्विषय होना। मूर्ति में पाँचों विषय वर्तमान हैं। मोटे तौर पर देखो तो मूर्ति में रूप तो है ही। मेवा, मिष्टान्न और दूध, जल जो चढ़ाया जाता है उनमें रस वर्तमान ही है। पुष्प जो चढ़ाये जाते हैं, उनमें गन्ध मौजूद ही है। घण्टा-घड़ियाल जो बजाते हैं उसमें शब्द होता ही है। मूर्ति स्वयं भी पाँच तत्वों से बनी हुई है, जिनका धर्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। फिर मूर्ति से मन की चंचलता कैसे दूर हो सकती है ? यदि मूर्ति से मन की चंचलता दूर होती तो जिन श्रीकृष्ण की लोग मूर्ति बनाते हैं, वे श्रीकृष्ण साक्षात् अर्जुन के सामने मौजूद थे परन्तु अर्जुन के मन की चंचलता दूर नहीं हुई। वह श्रीकृष्ण महाराज से कहता है—

"चंचल हि मनः कृष्णः प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ (गीता)

अर्थात् मन बड़ा चंचल, हठीला और दृढ़ है। इसे रोकना मैं वायु के समान अत्यन्त कठिन समझता हूँ।

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

'असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥' (गीता)

अर्थात् हे अर्जुन ! इसमें सन्देह नहीं कि मन बड़ा चंचल और हठीला है, परन्तु अभ्यास और वैराग्य से वह वश में हो सकता है। जब असली श्रीकृष्ण की मूर्ति से अर्जुन का मन स्थिर न हुआ जब कि वह रात-दिन उन्हें देखता था, तो फिर नकली और जड़ पदार्थों से बनी हुई श्रीकृष्ण की मूर्ति से मन कैसे स्थिर हो सकता है ?

कमल—तो क्या मूर्ति पूजा नहीं करनी चाहिये ?

विमल—मूर्ति पूजा करनी चाहिए परन्तु बेजान अर्थात् जड़ मूर्ति की पूजा जड़ की तरह और जानदार अर्थात् चेतन मूर्ति की पूजा 'चेतन' की तरह करनी चाहिये।

कमल—जड़ की पूजा जड़ की तरह, और चेतन की पूजा

चेतन की तरह करनी चाहिए, इसका मतलब क्या है, मैं समझा नहीं ?

विमल—'पूजा' शब्द के धातु सम्बन्धी और व्यावहारिक कई अर्थ हैं। जैसे पूजा का अर्थ—है—सत्कार, आदर, पूजा का अर्थ है—किसी चीज का उचित प्रयोग, किसी चीज की उचित रक्षा, किसी को उचित दण्ड। अब सोचो, जड़ मूर्ति की पूजा का क्या अर्थ है ? जड़ मूर्ति की पूजा का अर्थ है—उस मूर्ति को साफ-सुथरा रक्खा जाय। सुरक्षित स्थान पर हो ताकि टूटने, फूटने न पाये, मैली-कुचैली बेआब और बेकार न होने पावे। यहाँ उचित प्रयोग और उचित रक्षा ही जड़ मूर्ति की पूजा है। पूजा शब्द का अर्थ प्रत्येक पदार्थ को सिर झुकाना, पुष्प, पत्र, मेवा मिष्ठान्न आदि चढ़ाना नहीं होता। जैसे किसी ने किसी से कहा—यह जो महात्मा हैं, इनकी पेट पूजा कर दो।' तो इसका क्या अर्थ होगा ? यही कि, इनको भोजन करादो। यह अर्थ नही होगा, कि इनके पेट पर फूल, पत्ते, पानो, मेवा और मिष्ठान्न चढ़ादो। इसी प्रकार किसी ने किसी से कहा—यह गुण्डा जो ज्यादा बकवास कर रहा है, 'इसकी पीठ पूजा' करदो, तब यह मानेगा !' अब इसका क्या अर्थ होगा ? यह होगा कि इसकी पीठ में दस-पाँच डण्डे लगादो। यह अर्थ नहीं होगा, कि इसकी पीठ पर फल-फूल और मेवा मिष्ठान्न चढ़ादो। यहाँ एक स्थान पर पूजा का अर्थ भोजन कराना है, दूसरे स्थान पर डण्डे लगाना है, बस इसी प्रकार जड़ मूर्ति पूजा का अर्थ उसको सुरक्षित रखना होता है। उसके ऊपर सामग्री चढ़ाना और नमस्कार करना नहीं होता। क्योंकि उस बेजान मूर्ति में वह योग्यता नहीं है जो हमारी श्रद्धा भक्ति को समझ सके और मेवा मिष्ठान्न तथा फल-फूल से लाभ उठा सके। जितनी चेतन मूर्तियाँ हैं—जैसे माता, पिता, गुरु, अतिथि, संन्यासी, उपदेशक तथा अन्य प्राणी वे सब मेवा, मिष्ठान्न, फल, फूल आदि से लाभ उठा सकते हैं। उनकी पूजा, फूल, फल, मेवा मिष्ठान्न आदि विविध प्रकार के पदार्थों से करनी ही चाहिए। यहाँ पूजा का अर्थ 'आदर' या 'सत्कार' माना जायेगा।

कमल—जब ईश्वर सब जगह है, तो मूर्ति में भी है, फिर क्यों न मूर्ति को पूजा जाय ? पूजा करने वाले पत्थर को नहीं पूजते उसमें व्यापक परमात्मा को ही पूजते हैं।

विमल—यह सत्य है कि ईश्वर सर्वत्र होने के कारण मूर्ति में भी व्यापक है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है, कि सब जगह होने से सब जगहों में और सब चीजों में उसकी पूजा हो सकती है। देखो ! पूजा करने वाला 'जीवात्मा' है। इसका (पूजा करने का) उद्देश्य यह है कि ईश्वर से मेल हो जाय। मेल वहाँ होता है, जहाँ मिलने वाले दोनों मौजूद हों। मूर्ति में ईश्वर तो है पर वहाँ जीवात्मा तो है ही नहीं, जिसे ईश्वर से मिलना है। फिर मिलाप हो तो कैसे ? हाँ हर मनुष्य के अपने हृदय में जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही उपस्थित हैं। वहाँ दोनों का मेल अवश्य हो सकता है। अतएव जिस मनुष्य को ईश्वर से मिलना है उसे अपने हृदय में ही (मन और इन्द्रियों को वश में करके) ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। देखो ! ईश्वर सब जगहों में व्यापक है, यह जानकर भी क्या सब स्थानों का जल पीने के योग्य होता है ? परमात्मा का वास शेर और साँप दोनों में है, मैं पूछता हूँ क्या शेर और साँप के पास जाना उचित होता है ? इसलिये यह कहना कि परमात्मा मूर्ति में भी व्यापक है, इसलिए मूर्ति की पूजा करनी चाहिये, कोरी अज्ञानता और भोलेपन की बात है। परमात्मा मिश्री में है और विष में भी है, तो क्या विष को खाना चाहिये ? हरगिज नहीं। खानी तो वही चीज चाहिए जो खाने योग्य है। मूर्ति पूजन करने वाले समझते तो यही हैं कि हम मूर्ति में व्यापक परमात्मा की पूजा कर रहे हैं, परन्तु वास्तव में मूर्ति द्वारा व्यापक भगवान् की पूजा होती नहीं। तुम कहोगे क्यों ? इसलिए कि जिन पदार्थों को मूर्ति पर चढ़ाया जाता है उनमें भी परमात्मा व्यापक है। जैसे आकाश घड़े में भी व्यापक है और ईंट में भी। अब यदि कोई मनुष्य यह चाहे कि घड़े में जो आकाश व्यापक है उसके ईंट मार दूँ तो उसकी यह सर्वथा भूल होगी। क्योंकि व्यापक होने के

कारण आकाश को ईंट लग नहीं सकती, यदि ईंट उठाकर मारेगा भी तो घड़ा ही टूटेगा, आकाश नहीं। क्योंकि आकाश तो उस ईंट में भी है। इस प्रकार जो भी पुष्प, पत्र, मेवा मिष्ठान्न मूर्ति में व्यापक परमात्मा पर चढ़ाया जाता है, वह मूर्ति पर ही चढ़ना है, भगवान् पर नहीं। क्योंकि भगवान् तो उन पदार्थों में भी व्यापक है।

कमल—मूर्ति पर फल, पुष्प आदि न चढ़ाये जायें परन्तु उसको श्रद्धापूर्वक देखने से व्यापक परमात्मा और उसकी महिमा का ज्ञान अवश्य हो जाता है।

विमल—यह भी बिल्कुल उल्टी बात है। जरा सोचो तो सही कि मूर्ति को देखने से व्यापक परमात्मा और उसकी महिमा का ज्ञान कैसे हो जाता है ? देखो ! तिलों में तेल व्यापक है, परन्तु देखने वाले को क्या दिखाई देगा, तिल या तेल ? तिल ही तो दिखाई देंगे। चाहे वह कितनी ही श्रद्धा व ध्यान से उसे क्यों न देखे। तेल कब दिखाई देगा, जब उन तिलों को तोड़ दिया जाय, कोल्हू में पेल दिया जाय। इसी प्रकार मूर्ति में भगवान् व्यापक है, परन्तु देखने वाले को मूर्ति ही दिखाई देगी भगवान् नहीं। भगवान् तो तभी दिखाई देगा, जब जड़ मूर्ति से नाता तोड़ दिया जाय और अपने आत्मा में उसकी खोज की जाय। रही ईश्वर महिमा के ज्ञान होने की बात, सो मनुष्य की बनाई मूर्ति में भगवान् की महिमा क्यों दिखाई देगी ? उसमें तो मनुष्य की ही महिमा दिखाई देगी कि उसने किस अकलमन्दी से उसे बनाया है। हाँ, परमात्मा की बनाई हुई चीजों में परमात्मा की महानता अवश्य दिखाई देगी। तुम्हें परमात्मा की महानता देखनी है, तो सारी सृष्टि का विचार पूर्वक अध्ययन करो, फिर देखो ईश्वर की बनाई हुई छोटी से छोटी चीज में कितनी महानता प्रकट होती है। इन मनुष्यकृत जड़ मूर्तियों में परमात्मा की महानता का कौन सा चिह्न है, जो प्रकट होगा ?

कमल—मित्र, फल सदैव भावना का होता है, मूर्ति को ईश्वर न मानते हुए भी हम उसमें ईश्वर की भावना करके फल प्राप्त कर

सकते हैं। दूसरे, कोई आदमी किसी स्थान पर एक दम ऊँचा नहीं चढ़ सकता, उसके लिए सीढ़ी (जीना) चाहिए। मैं मूर्ति-पूजन को ईश्वर प्राप्ति की पहली सीढ़ी मानता हूँ। अतएव यदि कोई मनुष्य भगवान् की कल्पित मूर्तियाँ बनाकर पूजा करता है तो इसमें कोई दोष नहीं।

विमल—तुम्हें याद रखना चाहिए, भावना किसी चीज की वास्तविक यानी असलियत को नहीं बदल सकती। कोई मनुष्य अज्ञानवश चूने के पानी में दूध की भावना करले तो क्या उससे मक्खन निकाल सकता है? जल में अग्नि की भावना करने से क्या सर्दी दूर कर सकता है? पत्थर में रोटी की भावना करने से क्या पेट भर सकता है? यदि भावना करने से ही प्रत्येक चीज की प्राप्ति हो जाती तो संसार में न तो लोग दुःखी देखे जाते और न परिश्रम करते हुए नजर आते। भावना तभी भावना है, जब वह सत्य पर आश्रित हो, नहीं तो वह अभावना है। कोई आदमी जुलाब की गोलियों में चूरन की भावना करके उन्हें खा जाये तो क्या उसे दस्त नहीं आयेंगे? जिस चीज का जो गुण है, वह उससे कैसे दूर हो सकता है, इसलिये यह कहना कि भावना करके फल प्राप्त किया जा सकता है, सरासर अज्ञानता है।

देखो! सोमनाथ के मन्दिर के पुजारियों की जड़ मूर्ति में भावना थी कि यह साक्षात् महादेवजी हैं। जब महमूद गजनवी ने चढ़ाई की, तो पण्डे और पुजारी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। कहने लगे—सब मिलकर सोमनाथजी का जप करो, वे स्वयं ही म्लेक्षों का संहार कर देंगे, हमें लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस भावना और विश्वास से जो परिणाम निकला, इतिहास के पढ़ने वाले उसे अच्छी तरह जानते हैं। सोमनाथ ही क्यों? इसी भावना से हजारों मन्दिर और मूर्तियाँ टूट गईं। अरबों रुपयों की सम्पत्ति लुटेरे लूटकर विदेशों को ले गये। फिर भी लोगों की अन्धी भावना दूर नहीं हुई। कैसे आश्चर्य की बात है कि बेजान मूर्तियाँ जो कुछ भी नहीं कर सकती थीं उनमें तो लोगों ने कब सकने की भावना रक्खी और जो जानदार

सब कुछ कर सकते थे उनमें न करने की भावना रक्खी। हमारे देश और जाति के पतन का यही तो मूल कारण हुआ। अब तुम समझ गये होगे कि अज्ञानतापूर्ण भावना कितनी दुःखदायक होती है। तुम्हारा जो यह कहना है कि मूर्ति-पूजा ईश्वर-प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है, यह बात भी बिल्कुल गलत है। हाँ, चेतन मूर्तियों की पूजा तो ईश्वर प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी किन्ही अंशों में मानी जा सकती है, जड़ मूर्तियों की पूजा कदापि नहीं। जड़मूर्ति हिमालय पहाड़ पर चढ़ने की चाहे भले ही पहली सीढ़ी मान ली जाय लेकिन ईश्वर प्राप्ति की पहली सीढ़ी कैसे हो सकती है, जबकि वह ज्ञान-शून्य है ? कोई मनुष्य अंग्रेजी पढ़ना चाहे तो उसकी सीढ़ी—ए, बी, सी, डी, आदि वर्ण होंगे। संस्कृत या हिन्दी पढ़ना चाहे, तो अ, आ, इ, ई, आदि वर्ण पहली सीढ़ी होंगे। यदि कोई मनुष्य ए, बी, सी, डी, को प्रथम सीढ़ियाँ मानकर संस्कृत पढ़ना चाहे तो कैसे पढ़ सकता है ? अलिफ, बे, पे, ते, को पहली सीढ़ी बनाकर अंग्रेजी या संस्कृत पढ़ना चाहे तो कैसे पढ़ सकता हैं ? जो जिसकी सीढ़ी है उससे ही काम चल सकता है। ईश्वर-प्राप्ति की सीढ़ियाँ चेतन प्राणियों की निष्काम सेवा, सत्सङ्ग यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। इन पर ही लगातार चढ़ने अर्थात् इनका विधिपूर्वक पालन करने से ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है।

तुमने जो कहा—भगवान् की कल्पित मूर्तियाँ बनाकर पूजने में क्या दोष है ? दोष एक नहीं है अनेकों दोष हैं (१) पहिला दोष तो यह है कि नकली चीज में असली जैसे गुण मानकर मनुष्य अपने आपको ही धोखा देता है पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग भी अच्छी तरह जानते हैं कि कोई भी नकली चीज असली का काम दे नहीं सकती। बिल्ली के सामने मिट्टी या रबर का चूहा बना के डाल दो वह कभी उसके ऊपर नहीं झपटेगी। भ्रमर के सामने कागज के फूल बना के डालो, वह उन पर कभी नहीं आकर बैठेगा। इस प्रकार अन्य प्राणी नकली चीज से कभी प्रेम न करेंगे। परन्तु मनुष्य जो संसार के

प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ होने का दावा करता है, नकली चीजों से यथेष्ठ फल पाने की आशा करता है। भला इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा ! (२) दूसरा दोष यह है कि ईश्वर की कल्पित मूर्ति बनाने वाले अपनी जैसी ही आवश्यकता ईश्वर में भी समझते हैं जैसे मनुष्य भोजन की आवश्यकता अपने लिए समझता है वैसे ही ईश्वर में समझकर भोग लगाता है, जैसे आप कपड़े पहनता है, वैसे ही ईश्वर को पहिनाता है। जैसे आप नहाता है वैसे ही ईश्वर को स्नान कराता है। जैसे आप सोता जागता है वैसे ही ईश्वर को भी सुलाता और जगाता है, और जैसे आप आभूषण पहिनता है, वैसे ही ईश्वर को भी पहिनाता है। जब मनुष्य अपनी जैसी आवश्यकतायें ईश्वर में भी मानता है तो उससे कल्याण की क्या आशा की जा सकती है ? जो स्वयं ही जरूरतमन्द है वह दूसरे की जरूरत कैसे पूर्ण कर सकेगा ? क्या अन्धा अन्धे को रास्ता दिखा सकता है ? हरगिज नहीं। (३) तीसरा दोष यह है—ईश्वर एक है और मूर्तियाँ अनेक हैं क्योंकि प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने २ विश्वास के अनुसार मूर्तियाँ बनाई हैं। फलतः आपस में साम्प्रदायिक राग-द्वेष, लड़ाई-झगड़ा रहता है जिससे जातीय (राष्ट्रीय) संगठन को बहुत बड़ा धक्का लगता है। ऐसे सैकड़ों दोष बताये जा सकते हैं।

कमल—तो तुम्हारा मतलब यह है कि मूर्ति को न तो बनाना चाहिए और न पूजा करनी चाहिए। मैं तो समझता हूँ शान्त वीतराग और महान् पुरुषों के चित्र और मूर्ति देखने से मन को शान्ति मिलती है और प्रभाव भी पड़ता है।

विमल—मेरा मतलब यह हरगिज नहीं कि मूर्तियाँ और चित्र न बनाना चाहिए। मैं तो कहता हूँ, बनाने चाहिए। संसार के महान् पुरुषों की मूर्ति या चित्र बनाना उनकी यादगार को कायम रखना है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि चेतन मनुष्यों की तरह उनकी पूजा करनी चाहिए या उनको परमात्मा या परमात्मा का प्रतिनिधि समझकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की याचना उनसे करनी चाहिए। बेजान चीज बेजान ही है, उनमें यह योग्यता कहाँ है कि वह जीवित

मनुष्य या परमात्मा के स्थान में काम आ सके। जो पिता जीवित अवस्था में पुत्र से प्रेम कर सकता है, मरने पर भी क्या वैसा ही प्रेम कर सकेगा ? जिस शरीर से पिता ने पुत्र को गोद में लेकर खिलाया प्राण निकल जाने पर वही शरीर क्या पुत्र के किसी काम में आता है ? उस मृतक पिता के शरीर में और पत्थर की बनी हुई मूर्ति में क्या फर्क है ? यही कि पत्थर या धातु की मूर्ति सड़ती नहीं, मृतक का शरीर सड़ जाता है। अन्यथा और बातें एक जैसी ही हैं, उनकी पूजा का अर्थ ही यह है कि उनका ठीक इस्तेमाल किया जाय। यदि उनका इस्तेमाल न किया जायेगा तो वे ही पदार्थ मनुष्य को हानि पहुँचायेंगे। यदि कहो कैसे ? तो सुनो ! एक मनुष्य गङ्गाजी का भक्त है, रात दिन पूजा करता है। फूल बताशे चढ़ाता है और गङ्गा लहरी का पाठ करता है। परन्तु वह तैरना नहीं जानता। एक रोज जरा गहरे पानी में चला जाता है अब बताओ, उसे गङ्गा डुबायेगी या नहीं ? चाहे वह उसका कितना ही बड़ा भक्त क्यों न हो, तैरना न जानने के कारण गङ्गा फौरन डुबो देगी। एक दूसरा मनुष्य है जो गङ्गा को माता न मानकर एक नदी मानता है। हत्या करके आ रहा है। ख़ून में लथपथ है। तुरन्त गङ्गा में कूद पड़ता है; लेकिन तैरना जानता है। बस-फिर क्या ? गङ्गा की छाती को चीर कर फौरन निकल जाता है। ऐसा क्यों हुआ ? इसलिए कि वह जल का ठीक इस्तेमाल करना जानता था जब कि पहला जल की गलत पूजा करता था, इसलिये गंगा ने पहले को डुबो दिया, दूसरे को बचा दिया। एक तो गङ्गा की पूजा करने वाले वे लोग हैं ज़ो सिर्फ स्नान में ही मुक्ति मानते हैं, प्रतिवर्ष लाखों करोड़ों रुपये रेलवे कम्पनियों को दे देते हैं। धक्के खा-खाकर दुःखी और परेशान होते हैं। उन्होंने गङ्गा की पूजा—स्नान करना, सिर झुकाना और फल-फूल चढ़ाना ही समझा है। दूसरे वे लोग हैं, जिन्होंने गङ्गा से नहरें निकालीं फलतः करोड़ों रुपये सिंचाई से प्राप्त किये। गंगा से बिजली निकाली और गंगा से चक्कियाँ पिसवाईं। वे लोग गंगा में स्नान करने कभी नहीं गये, बल्कि

नलों द्वारा उन्होंने अपने घर में ही गंगा को बुला लिया। और सब तरह से फायदा उठाया। फायदा क्यों न उठाते, जब उन्होंने जड़ पदार्थ की पूजा का अर्थ और उसका उचित प्रयोग करना समझा है ? गंगा ही क्या, प्रत्येक जड़ पदार्थ के विषय में ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। रही मूर्ति या चित्र को देखकर प्रभाव पड़ने की बात, इसके सम्बन्ध में भी जरा सोचो। अच्छा या बुरा प्रभाव मूर्ति या चित्र देखने से नहीं पड़ता, किन्तु अपने आन्तरिक संस्कारों के कारण से पड़ता है। जैसे एक हिन्दू नें राम या कृष्ण की मूर्ति को देखा। वह उसके आगे श्रद्धा से सिर झुका देता है। वह सिर क्यों झुकाता है ? इसलिये कि वह राम और कृष्ण का इतिहास जानता है। उसके हृदय पर संस्कार पड़ा हुआ है कि राम और कृष्ण ईश्वर के अवतार थे उन्होंनें रावण और कंस को मारा है। यह संस्कार चाहे पुस्तकों के पढ़ने से पड़ा हो, चाहे एक दूसरे से सुनकर पड़ा हो, पड़ा अवश्य है। इसलिए कि मूर्ति को देखकर वह प्रभावित होता है। लेकिन उसी हिन्दू के सामने अगर जापान के देवता 'कन्फ्यूशियस' की मूर्ति आजाये तो उसे देखकर वह कभी प्रभावित न होगा, न उसमें उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी। क्योंकि 'कनफ्यूशियस' के बारे में वह कुछ नहीं जानता, उसके हृदय पर उसका कोई संस्कार नहीं है, इसलिए वह उसे सिर नहीं झुकाता। एक मुसलमान किसी भी हिन्दू देवी देवता की मूर्ति को देखकर श्रद्धा से सिर नहीं झुकाता, इसका क्या कारण है ? यही कि उस मुसलमान के हृदय पर उसका कोई संस्कार नहीं है। उसे एक निर्बल तथा कुरूप मुसलमान का चित्र तो अच्छा लगता है, परन्तु हिन्दू देवी देवता की मूर्ति या चित्र अच्छा नहीं लगता, न उसमें उसकी श्रद्धा होती है। मुसलमान का चित्र अच्छा क्यों लगता है ? इसलिए कि उसके मन में 'मोमिन' या इस्लाम का सहायक होने के संस्कार दृढ़ हो रहे हैं। अब तुम समझ गये होंगे कि जो कोई भी प्रभाव पड़ता है, वह अपने संस्कारों के कारण पड़ता है, मूर्ति को देखने से नहीं। यदि मूर्ति को देखने से पड़ता तो

प्रत्येक मनुष्य के मन पर प्रत्येक मूर्ति को देखने से पड़ता और उसको शान्ति मिलती। परन्तु ऐसा नहीं होता।

कमल—जैसे स्कूल में नक्शे दिखाये जाते हैं, छोटे से नक्शे से सारे संसार का ज्ञान प्राप्त करा देते हैं। इसी प्रकार छोटी मूर्ति से विशाल परमात्मा का ज्ञान भी प्राप्त कराया जा सकता हैं ?

विमल—प्यारे मित्र ! नक्शा साकार जगत् का बनाया जाता है और उससे समुद्र, नदी, झील, पहाड़, नगर, कस्बा, सड़क, रेलें आदि का ज्ञान कराया जा सकता है। परमात्मा सर्वव्यापक और निराकार है। अतः उसका नक्शा (मूर्ति) सम्भव नहीं है, न इससे परमात्मा का ज्ञान हो सकता है।

कमल—अक्षर और शब्द निराकार हैं परन्तु उनकी मूर्ति बनाकर बालकों को बोध कराया जाता है कि नहीं ? यदि अक्षरों और शब्दों का आकार न बनाया जाय, तो लड़के कैसे विद्या प्राप्त कर सकें ?

विमल—अक्षर और शब्द आँख से नहीं देखे जाते, परन्तु कानों से सुने तो जाते हैं। समझाने के लिए जो कान का विषय है, उसे नेत्रों का लोग बना लेते हैं। लेकिन जो किसी इन्द्रिय का विषय न हो, उसे समझाने के लिए किस इन्द्रिय का विषय बनाया जाय ? किसी का भी नहीं। उसे तो केवल अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है और यह भी कोई आवश्यक नहीं कि निराकार अक्षरों और शब्दों के कल्पित चिन्ह ही बनाये जायँ तभी विद्या प्राप्त हो सकती है। यदि ऐसा होता तो अन्धे मनुष्य तो पढ़े हुए मिलते ही नहीं, क्योंकि उन्होंने न तो अ, आ, इ, ई, का रूप देखा है, और न ए० बी० सी० डी० का। लेकिन अन्धे मनुष्य अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं के बड़े २ विद्वान् मिलते हैं। दूसरे लिखे हुए कल्पित चिन्ह वर्ण कहलाते हैं, अक्षर नहीं। जो बोला जाता है वह अक्षर है और निराकार है और जो लिखा जाता है वह वर्ण है और साकार है।

कमल—अच्छा समय निराकार है, परन्तु उसकी मूर्ति घड़ी

के रूप में बनाकर काम निकालते हैं या नहीं ?

विमल—घड़ी समय की मूर्ति नहीं है, सूर्य की मूर्ति है। जै
सूर्य से समय का ज्ञान होता है वैसे ही घड़ी से समय का ज्ञान हो
है। घड़ियों का सारा क्रम सूर्य पर निर्भर है।

कमल—निराकार का ध्यान करें तो कैसे करें ? यदि मू
सामने हो तो उसका ध्यान भी होता रहे। निराकार का ध्यान कर
बैठे, आँखें मींचली, अब चीज़ कोई सामने नहीं तो मन लगेगा भी कैसे

विमल—जगत् दो तरह का है—एक आध्यात्मिक, दूस
भौतिक। आध्यात्मिक का अर्थ है आत्मा सम्बन्धी और भौतिक क
अर्थ है पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पञ्च भूतों सम्बन्धी। याद रखो प
मात्मा सम्बन्धी विचार आध्यात्मिक जगत् से सम्बन्धित है। जब तु
ध्यान करने बैठे, और मूर्ति का आकार ही मन और मस्तिष्क
घुमाते रहे तो फिर आध्यात्मिक अर्थात् परमात्मा सम्बन्धी चिन्त
कहाँ हुआ ? वह तो भौतिक अर्थात् भूत सम्बन्धी हुआ, क्योंकि मू
पञ्च भूतों से बनी है। आध्यात्मिक ध्यान तो तभी बनेगा, जब संसा
की समस्त मूर्तिमान वस्तुओं का विचार छोड़कर आत्मा में ही प
मात्मा की व्यापकता का अनुभव करोगे। परमात्मा और आत्मा
देशकाल की दूरी नहीं केवल ज्ञान की दूरी है। अज्ञान का परद
हटते ही परमात्मा का अनुभव होने लगता है। रही मन लगने क
बात सो मन तो लगाने से लगता है। जिस काम का भी अभ्या
करोगे उसमें मन लगेगा। अभ्यास से संसार के सारे काम सि
हो जाते हैं। बहुत सी स्त्रियाँ पानी के दो तीन घड़े सिर पर रखक
और गोद में बच्चे को लेकर आपस में बातचीत करती हुई ऊबड़
खाबड़ भूमि पर चली जाती हैं क्या मजाल जो एक बूँद भी पान
गिर जाये। एक नट लम्बे बांस पर कई २ घड़े और दोनों हाथों
दो-दो लड़के लिए हुए चढ़ जाता है। सरकसों में तार पर साइ
किलें लड़कियाँ चलाती हैं। कुत्ते बिल्ली तक भी तोप और बन्दू
चलाते हुए देखे जाते हैं। यह सब अभ्यास का ही तो परिणाम है

दुबले-पतले आदमी चार बजे उठकर ठण्ड में गङ्गा, जमना नहाने चले जाते हैं और बड़े २ तगड़े और तन्दुरुस्त चार बजे रजाई से मुँह खोलते हुए भी घबराते हैं। क्यों ? जिन्होंने नहाने का अभ्यास डाला हुआ है, उनके लिए जाड़ा गर्मी सब एक समान हैं। इसी प्रकार जिन्होंने भगवान के चिन्तन का अभ्यास डाला हुआ है, यम-नियम आदि की साधना द्वारा वे घण्टों नदी, पर्वतों और एकान्त स्थान में बैठे २ चिन्तन करते हैं। और जो लोग समाधि लगाते हैं वे कई-कई दिन तक ध्यान करते रहते हैं। क्या वे लोग किसी मूर्ति का ध्यान करते हैं ? हरगिज नहीं। गहराई से सोचो, तो मूर्ति में मन लगता ही नहीं क्योंकि कभी नाक का ध्यान होगा, कभी आँख का, कभी हाथ-पैरों का, मन अङ्गों में ही चक्कर काटता रहेगा। मन के आगे जब कोई मूर्ति नहीं होगी तभी उसकी वृत्तियें आत्मा की ओर लगेंगी।

कमल—हलवाई की दुकान से मैं चार आने के पेड़े लाता हूँ, जिन्हें खाकर स्वाद आता है। पेड़ा साकार है और स्वाद निराकार है। हलवाई से कहा जाये, चार आने का स्वाद दे दो जो निराकार है तो कैसे दे देगा ? इससे पता चलता है कि साकार मूर्ति से ही निराकार परमात्मा का आनन्द आ सकता है।

विमल—मित्र, देखो ! जो जिसका गुण है, खाने पर वह तो प्रतीत होगा। पेड़ा खाने से पेड़े का स्वाद आयेगा, लड्डू खाने पर लड्डू का आयेगा। पेड़ा और स्वाद में गुण-गुणी का सम्बन्ध है न कि व्याप्य व्यापक का। पेड़ा द्रव्य है स्वाद उसका गुण है। परन्तु मूर्ति और परमात्मा दोनों द्रव्य हैं। पेड़ा खाने से तो उसका गुण स्वाद प्रतीत हो जायगा, परन्तु मूर्ति से परमात्मा का आनन्द कैसे प्रतीत होगा, जबकि मूर्ति का परमात्मा गुण नहीं है। दूसरे पेड़ा खाने पर ही पेड़े का स्वाद आता है। कोई आदमी मिट्टी का नकली पेड़ा बनाकर खाने लगे तो क्या स्वाद आ जायगा ? हरगिज नहीं ! इसी प्रकार परमात्मा का अनुभव करने पर ही परमात्मा का आनन्द आ

सकता है, परमात्मा के स्थान पर नकली मिट्टी-पत्थर के परमात्मा की मूर्ति बनाने पर परमात्मा का आनन्द कैसे आ जायगा ?

कमल—जिस तरह राजा की मूर्ति के कारण नोटों और रुपयों का व्यवहार सुखदायक है इसी प्रकार मूर्ति की पूजा सुखदायक है ।

विमल—प्रथम तो राजा शरीरधारी है उसकी मूर्ति नोट और रुपयों पर बन सकती है, परमात्मा निराकार है उसकी मूर्ति नहीं बन सकती । दूसरे नोट और रुपये राजा की आज्ञा से राजा के ही कारखाने में बने हुए सुखदायक हैं, यदि कोई मनुष्य राजा की आज्ञा के विरुद्ध जाली सिक्का अपने घर में वनाने लगे, तो जेल की हवा खाये बगैर न रहे । इसी प्रकार परमात्मा की बनाई हुई मूर्तियों का यथा-योग्य व्यवहार ही सुखदायक है, परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध परमात्मा के स्थान में मिट्टी-पत्थर की जाली मूर्तियाँ बनाना और उनकी पूजा करना अनेक योनि रूप जेलखाने में जाने का प्रयत्न करना है ।

कमल—महाभारत में आता है—एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर शस्त्र-विद्या सीखी थी ।

विमल—द्रोणाचार्य की मूर्ति थी तब एकलव्य ने उनकी प्रतिमूर्ति बनाई उसने परमेश्वर के स्थान में उसकी पूजा नहीं की । दूसरे शस्त्र-विद्या मूर्ति ने नहीं सिखलाई, यदि मूर्ति ही सिखलाती तो उसे अभ्यास करने की क्या आवश्यकता थी ? उसने सारी शस्त्र-विद्या अभ्यास से सीखी । द्रोणाचार्य को इस बात का पता भी न चला । जब पता चला तो मूर्ति बनाने का फल, अपना अगूंठा काट देना मिला । मूर्ति में यह योग्यता कहाँ है, कि वह किसी काम को सिखा सके ? यदि सिखा सके तो व्यास जी की मूर्ति रखकर प्रत्येक को उससे वेद पढ़ लेना चाहिए । कुवेर की मूर्ति से प्रत्येक को धन प्राप्त कर लेना चाहिए । जड़ मूर्ति से सिवाय जड़ता के और कोई गुण मिल भी क्या सकता है ? एक बैरा अंग्रेजों की नौकरी करके अँग्रेजी बोलना सीख जाता है । हलवाई की नौकरी करने वाला मिठाई बनाना सीख जाता है । अग्नि के पास बैठने से गर्मी महसूस होती है,

और पानी के पास बैठने से शीतलता। जिसकी सङ्गति की जायगी उसका गुण अपने अन्दर आयेगा। जड़ मूर्तियों की संगति से जड़ता आई, लोग पिटे, मन्दिर टूटे। देश में भयङ्कर गुलामी और गरीबी आई। जड़ की संगति से आत्मविश्वास और कर्मण्यता नष्ट हुई।

कमल—अच्छा, इस पर तो काफी विचार हो चुका है, अब यह बताओ, ईश्वर दयालु और न्यायकारी है या नहीं ? यदि है, तो दया और न्याय दोनों साथ-साथ कैसे रह सकते हैं ? क्योंकि जब दया करेगा तो न्याय नष्ट हो जायगा और न्याय करेगा तो दया नष्ट हो जायगी।

विमल—इस पर विचार कल होगा।

—×—

छठा दिन , प्रातःकाल

ईश्वर न्यायी है या दयालु ?

विमल—तुम्हारा कल का प्रश्न था दया और न्याय दोनों गुण ईश्वर में साथ २ कैसे रह सकते हैं ? वास्तव में दया और न्याय दोनों साथ-साथ ही रहते हैं। अन्तर केवल यह है, 'दया' दयालु ईश्वर अपनी तरफ से करता है और 'न्याय' वह जीवों के कर्म के अनुसार करता है। जैसे किसान ने खेत में दाना बोया, उस एक दाने की एवज में सैकड़ों दाने भगवान् ने उसे दिये। यह उसकी 'दया' है अब न्याय उसका यह है, जैसा तुमने बोया वैसा ही काटोगे। जैसा करोगे वैसा ही भरोगे। चना बोकर चना प्राप्त हो सकता है, गेहूँ नहीं। यही उसका 'न्याय' है। एक पिता के चार पुत्र हैं। चारों को उसने एक २ हजार रुपया दिया। यह उसकी पुत्रों पर 'दया' है। परन्तु यदि कोई दूसरे पुत्र से रुपये जबरदस्ती छीन लेता है, तो पिता रुपये छीनने वाले पुत्र

को दण्ड देता है। यह उसका 'न्याय' है। रुपयों का देना पिता का अपनी ओर से है इसलिए वह 'दया' है और दुष्ट पुत्र को दण्ड देकर अधिकारी को उसका अधिकार दिलाना पिता का 'न्याय' है। एक राजा डाकू को प्राण दण्ड देता है, यह उसका 'न्याय' है, प्राण-दण्ड देकर डाकू द्वारा पीड़ित मनुष्यों की वह रक्षा करता है यही उसकी 'दया' है। यदि राजा डाकू को छोड़ देता है तो यह उसका 'अन्याय' है। वास्तव में जो मतलब 'दया' से निकलता है वही 'न्याय' से निकलता है। जहाँ 'न्याय' न हो वहाँ दया कैसी ? क्या अन्यायी मनुष्य भी कभी दयालु हो सकता है ? 'अन्यायी' तो स्वार्थी होता है, दयालु नहीं। परमात्मा न्यायकारी होने से ही दयालु है। उसने जीवों के कल्याण के लिए सृष्टि बनाई, यह उसकी पूर्ण 'दया' है। ईश्वर कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी को फल दे रहा है, यही उसका 'न्याय' है।

कमल—जब कोई मनुष्य बुरा कर्म करता है, तो उसको परमात्मा जानता है या नहीं ? यदि जानता है, तो उसे तत्काल ही क्यों नहीं रोक देता ?

विमल—परमात्मा प्रत्येक को बुरे कर्म से तत्काल ही रोकता है। इसका सबूत यह है, जब मनुष्य बुरा कर्म करने को उद्यत होता है तो उसके अन्तःकरण में उसी समय भय, लज्जा, शङ्का के भाव उत्पन्न होते हैं और अच्छा कर्म करता है तो हृदय में उसी समय आनन्द उत्साह उत्पन्न होता है। यह सब परमात्मा की ओर से ही होता है। इसी को अन्तःकरण की आवाज कहते हैं। मनुष्य ही क्या पशुओं तक के अन्तःकरण में बुरा कर्म करने पर भय, लज्जा, शङ्का उत्पन्न होती है। कुत्ते को जब रोटी का टुकड़ा डाला जाता है, तो वह उसी जगह उस टुकड़े को आनन्दपूर्वक खाता रहता है, और पूंछ हिलाता जाता है। वही कुत्ता जब रोटियाँ चुराकर भागता है, तो न पूंछ हिलाता है और न खुलासा खाता है। बल्कि छिपकर आड़ में खाता है, क्यों ? इसलिए कि वह जानता है, यह पाप है, चोरी है इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा बुरे कर्म करने से हरेक प्राणी को

उसी वक्त रोकता है। हाँ इतनी बात अवश्य है परमात्मा किसी जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता को नहीं छीनता। स्वतन्त्रता छीन भी कैसे सकता है, जबकि जीव 'अनादि' है और कर्म करने में स्वतन्त्र है? दूसरे यदि ईश्वर जीवों की स्वतन्त्रता छीन भी ले तो वे जीव न तो जीव ही रहेंगे और न उनकी उन्नति ही हो सकेगी। जैसे यदि किसी स्कूल में लड़कों का इम्तिहान हो रहा है, मास्टर तमाम लड़कों पर निगरानी रख रहा है कि कोई लड़का किसी का सवाल न देख ले। कई लड़के उत्तर गलत भी लिख रहे हैं। मास्टर गलत उत्तर लिखते हुए भी देख रहा है। परन्तु वह उस समय लड़कों को रोकता नहीं, लिखने देता है। वह उनकी स्वतन्त्रता में बाधा नहीं डालता। यदि मास्टर समस्त लड़कों को स्वयं ही सही उत्तर लिखा दे, तो इसमें लड़कों की व्यक्तिगत उन्नति क्या हो सकती है ? और उनको पढ़ाकर परीक्षा लेने का अर्थ ही क्या निकल सकता है ? ऐसी अवस्था में वे विद्यार्थी, विद्यार्थी ही न रहेंगे, बल्कि मशीन के पुर्जे जैसे बन जायेंगे। मास्टर का काम तो लड़कों को अच्छी तरह पढ़ा देना है, पढ़कर प्रश्नों का सही उत्तर लिखना लड़कों का अपना काम है। इसी प्रकार परमात्मा का काम तो जीवों को वेद द्वारा विधि-निषेध के कर्मों का ज्ञान प्राप्त करा देना है, अच्छे या बुरे कर्म करना नहीं। कर्म तो जीव स्वतन्त्रता से ही करेंगे। यदि ज्ञान के अनुकूल कर्म करेंगे, तो सुख प्राप्त करेंगे और अज्ञान के अनुकूल करेंगे तो दुःख प्राप्त करेंगे। वेद ज्ञान के अतिरिक्त प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में भी बुरा कर्म न करने का आदेश परमात्मा की ओर से अवश्य होता है। उस आदेश पर प्राणी ध्यान दे या न दे, यह उसकी अपनी बात है। परमात्मा का बुरे कर्मों से रोकना इसी को कहा जाता है। जीवों के कर्म-करने की स्वतन्त्रता छीन लेना रोकना नहीं।

कमल—अच्छा, परमात्मा कर्मों का फल तत्काल क्यों नहीं देता ?

विमल—प्रत्येक कर्म का उसी समय फल देना बन भी कैसे

सकता है ? कल्पना करो कि परमात्मा ने किसी मनुष्य के कर्म पर प्रसन्न होकर उसे तत्काल फल दिया कि यह मनुष्य एक साल तक आनन्द भोगेगा। अब दूसरे दिन उसने बुरा कर्म किया उसका परमात्मा ने फल दिया कि एक वर्ष दुःख भोगेगा। अब सोचो, यदि यह मनुष्य एक साल तक आनन्द भोगता है तब तो उसने पहले कर्म का फल प्राप्त कर लिया और परमात्मा का नियम भी पूर्ण हो गया अब इस साल के बीच में चाहे वह कितने ही बुरे कर्म करे, उसका फल इस साल नहीं मिलना चाहिए। यदि इसी साल बुरे कर्म का भी फल मिलता है, तो पहले कर्म की एक साल की आनन्द भोगने की आज्ञा ईश्वर की टूट गई। जब जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, तो कभी बुरे कर्म करेगा और कभी अच्छे कर्म करेगा ही। यदि ईश्वर सबका तत्काल फल देता रहे, तो न तो बुरे कर्मों के फल की व्यवस्था बन सकेगी और न भले कर्मों के फल की व्यवस्था बन सकेगी। क्योंकि किसी भी कर्म के फल का समय पूर्ण न हो सकेगा। इसलिए परमात्मा प्रत्येक कर्म का फ़ल अपनी नियत व्यवस्था के अनुसार ही देता है।

कमल—यह संसार में जो लाखों योनियाँ है, क्या कर्म के फल से ही प्राप्त होती हैं ?

विमल—दुनियाँ में दो प्रकार की योनियाँ हैं। 'भोग योनि' और 'उभय योनि'। यह सब जीवों को कर्मानुसार ही प्राप्त हुई हैं।

कमल—'भोग-योनि' और 'उभय-योनि' से क्या तात्पर्य है ?

विमल—'भोग-योनि' वह है जिसमें जीव सुख दुःख भोगते हैं परन्तु भविष्य के लिये-कोई कर्म नहीं करते। जैसे पशु-पक्षी आदि। 'उभय योनि' मनुष्य योनि है। इसमें मनुष्य सुख-दुःख रूप फल भी भोगते हैं और भविष्य के लिए अच्छे बुरे कर्म भी करते हैं।

कमल—मनुष्य को 'उभय योनि' में क्यों माना गया है ?

विमल—पशु-पक्षियों को केवल खाने की चिन्ता रहती है, पदार्थों के उत्पन्न करने की नहीं। उनका जन्म परमात्मा की व्यवस्था

के अनुसार केवल भोग भोगने को ही है, कमाने को नहीं। देखो! गेहूँ, चना, जौ, आदि अनाज सब पशु-पक्षी खाते हैं, परन्तु वे उत्पन्न नहीं कर सकते क्योंकि उनमें विचार-शक्ति नहीं है। परन्तु मनुष्य अपनी विचार शक्ति के आधार पर पशुओं से काम लेकर अनाज उत्पन्न कर सकता है। 'विचारशक्ति' होने के कारण ही इसे 'उभय योनि' कहा गया है। यह पदार्थों का भोग भी करता है और उन्हें उत्पन्न भी करता है। अपनी विचारशक्ति के सहारे मनुष्य समस्त पक्षियों को अपने काबू में कर लेता है। एक गड़रिये के आधीन हजारों भेड़ें रहती हैं। एक ग्वाले के आधीन हजारों गायें रहती हैं। मनुष्य शेर और बड़े २ खूँख्वार जानवरों को सरकस में नाँच नचा देता है। जानवरों से ही क्या अपनी विचारशक्ति के कारण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि तत्वों से भी मनमाना काम ले लेता है। ईश्वर ने मनुष्य को पक्षियों जैसे पर नहीं दिये जो उड़ सके परन्तु इसने हवाई जहाज बना लिये। पानी में चलने के लिये मछली, कछुओं जैसे शारीरिक साधन नहीं दिये, लेकिन इसने पानी के जहाज तैयार कर लिये। गृद्ध और उकाब जैसी दूर की चीज देखने वाली आँखें नहीं दीं, परन्तु इसने दूरबीन और खुर्दबीन का निर्माण कर लिया। क्या बात है? यही कि मनुष्य में विचार शक्ति है। इसलिये वह उभय योनि है। यह पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगता है और भविष्य के लिये कर्म भी करता है।

कमल—क्या जितनी योनियाँ प्राप्त होती हैं कर्मानुसार ही होती हैं और क्या मनुष्य का जीव पशु-पक्षी आदि योनियों में भी जाता है?

विमल—हां, समस्त योनियाँ स्वकर्मानुसार ही प्राप्त होती हैं। जीव समस्त योनियों में आता जाता है। मनुष्य योनि में किये हुए कर्म ही पाप-पुण्य से सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि मैं बता चुका हूँ कि मनुष्य में ही 'विचारशक्ति' है। जब यह 'विचारशक्ति' का दुरुपयोग करता है, तो पापी बनकर अनेक योनियों में भ्रमण करता है। ईश्वर अपनी न्याय-व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक जीव को उसके सुधार के

लिये ही योनियाँ प्रदान करता है, मनुष्य जो भी अच्छे बुरे कर्म करता है, उसके संस्कार सूक्ष्म शरीर पर पड़ते हैं। यही अच्छे बुरे संस्कार उसे उत्कृष्ट-निकृष्ट योनियाँ प्राप्त कराते हैं।

कमल—'मनुष्य योनि' कैसे प्राप्त होती है और मुक्ति कब प्राप्त होती है ?

विमल—जब पाप की अपेक्षा पुण्य के संस्कार उत्कृष्ट होते हैं तब मनुष्य योनि प्राप्त होती है। और जब निष्पाप कर्मों के संस्कारों की प्रबलता होती है और ज्ञान हो जाता है, तो मरने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में जीव सांसारिक दुःखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

कमल—हाथी का जीव चींटी में कैसे समाता होगा ? क्योंकि बड़े शरीर के लिये बड़ा जीव और छोटे शरीर के लिये छोटा जीव होता होगा ?

विमल—जीव छोटे बड़े नहीं होते, जीव समस्त प्राणियों के एक जैसे हैं। शरीर में छोटा बड़ापन या भिन्नता होती है। जैसे एक ही इंजन में बहुत सी मशीनें लगी हुई हैं कोई मशीन काटती है, कोई छाँटती है, कोई छापती है, इंजन सबको एक ही प्रकार की शक्ति दे रहा है, परन्तु मशीनों के पुर्जों में भिन्नता होने के कारण काम भिन्न २ प्रकार के हो रहे हैं। देखो जहाँ किसी प्राणी को मनुष्य की तरह होठ मिले हैं, वहाँ वह दूध चूसता है, जहाँ चोंच मिली है वहाँ वह ठोंगे मारता है। एक खिलाड़ी जब मुर्गे का चोंगा पहिन कर ठोंगे मार सकता है तो फिर जीव में भेद कहाँ रहा ? शरीरों में ही तो भेद हुआ ?

कमल—क्या जन्म कर्मानुसार होता है ? यदि होता है तो जन्म के पहले कर्म कैसा ? जब विना शरीर कर्म नहीं हो सकता तो जीव के सङ्ग जब शरीर नहीं था तो उसने कर्म किया कैसे ? और जन्म रूप बन्धन में फँसा कैसे ?

विमल—जन्म तो अज्ञानता से होता है और योनियाँ कर्मा-

नुसार प्राप्त होती हैं। जैसे पहले स्कूल में लड़के का दाखिल होना अविद्या के कारण है, और श्रेणियाँ प्राप्त करना कर्म या योग्यता के आधार पर है, इसी प्रकार संसार रूपी स्कूल में जीव का आना अर्थात् प्रथम शरीर धारण करना अल्पज्ञता के कारण है और अनेक श्रेणियाँ रूपी योनियों को प्राप्त करना कर्मानुसार है। दूसरे जीव का एक ही जन्म नहीं, अनन्त बार शरीर से संयोग हुआ है और होता रहेगा। अनेक जन्मों के आत्मा पर संस्कार होते हैं। यदि कहो सृष्टि के आदि में कौन से कर्मों के संस्कार थे तो उत्तर यह है कि सृष्टि के आदि में उससे पूर्व सृष्टि के संस्कार थे। सृष्टि प्रवाह से अनादि है, दिन और रात की तरह निरन्तर चक्र चला आता है और चलता जायगा।

कमल—कुछ मनुष्यों का कहना है कि छोटे २ प्राणियों में विकास होकर मनुष्य का शरीर बना है। मनुष्य सृष्टि का अन्तिम विकास है। यह कहाँ तक ठीक है ?

विमल—भाई, यह बात गलत है। यदि ऐसा होता तो मनुष्य की उपस्थिति में अन्य प्राणियों का अभाव होना चाहिए था, परन्तु देखा यह जाता है कि मनुष्य भी मौजूद है और अन्य छोटे बड़े प्राणी भी मौजूद हैं। फिर कैसे माना जाय कि प्राणियों का विकास होते २ मनुष्य का विकास हुआ है। जब अंकुर में विकास होकर वृक्ष बन जाता है फिर अंकुर कहाँ रहता है ? कली में विकास होकर जब फूल बन जाता है तब कली कहाँ रहती है ? दूसरी बात विचारणीय यह है कि मनुष्य के अतिरिक्त जो भी प्राणी हैं, उन सबमें 'सामान्य ज्ञान' है परन्तु 'विशेष ज्ञान' मनुष्य में ही पाया जाता है। मनुष्य में 'विशेष ज्ञान' कहाँ से हुआ ? विचार-शक्ति से। यह 'विचार-शक्ति' अन्य प्राणियों में नहीं पाई जाती। यदि पशु-पक्षी इत्यादिकों में विचार-शक्ति होती तो मनुष्य उन पर शासन नहीं कर सकता था। देखो यह बात मानी हुई है कि अभाव से भाव कभी नहीं होता। यदि मनुष्य अन्य प्राणियों का विकसित रूप होता तो अन्य प्राणियों में विचार-शक्ति पाई जाती, परन्तु ऐसा नहीं है। विकासवाद कहता

है कि बन्दर से मनुष्य का विकास हुआ है। यदि ऐसा होता तो मनुष्य का बच्चा पानी में डाल देने से डूब नहीं सकता था। जब बन्दर से मनुष्य बना है तो बन्दर की तमाम शक्तियाँ मनुष्य में विकसित होनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं है। बन्दर के बच्चे को पानी में डाल दो तो फौरन तैर कर निकल जायगा। परन्तु मनुष्य का बच्चा तैरना न जानने के कारण डूब जायगा। इससे सिद्ध है कि मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जितनी भी योनियाँ हैं सबका निर्माण अपनी न्याय-व्यवस्था से कर्मानुसार भगवान् करता है।

—×—

भूत-प्रेत क्या हैं ?

कमल—क्या कोई भूत योनि भी है ? लोग भूत प्रतों की बड़ी कहानियाँ सुनाते हैं। भोपे, सयाने और मौलवी गण्डे ताबीज देते हैं, झाड़ फूंकी करते हैं तथा भूत-प्रेतों को भी उतारते हैं। क्या यह ठीक है ?

विमल—भूत, प्रेत की कोई सत्ता नहीं है। लोग जो कहानियाँ सुनाते हैं वे सब गढ़ी हुई होतीं हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान समय-भेद के नाम हैं। भूत का अर्थ गुजरा हुआ या बीता हुआ है। जब कोई मनुष्य मर जाता है, तो उसकी सत्ता वर्तमान नहीं रहती 'भूत' में गिनी जाती है और प्रेत कुछ नहीं है। जितने भी लोग भूत प्रेत देखने की बातें कहते हैं वे अंधेरे में देखने को कहते हैं। जितनी भी मिथ्या बातें हैं, सब अंधेरे में ही रहती हैं। संसार की सूक्ष्म और स्थूल चीजें इन्द्रियों तथा यन्त्रों द्वारा हर समय देखी जा सकती हैं। यदि भूत प्रेत कोई योनि होती तो वह भी अवश्य दिखाई देती परन्तु ऐसा नहीं है। जिनके मन में भ्रम और भय होता है, या जिनके मन पर भूत-प्रेतों के संस्कार पड़े होते हैं, वह उनको ही दिखाई देते

है, अन्यों को नहीं। मनोविज्ञान Psychology का सिद्धान्त है—मन पर जैसे संस्कार होंगे, भयभीत होने पर या मानसिक रोगों की अवस्था में वैसा ही चित्र दिखाई देने लगेगा। सोचने की चीज है, जब मनुष्य मर जाता है तो शरीर पञ्च भूतों में मिल जाता है और जीव कर्मानुसार शरीर धारण कर लेता है। फिर कैसा भूत और कैसा प्रेत ?

यदि कहा जाय भूत-प्रेत जीवात्मा या सूक्ष्म शरीर का नाम है तो जीवात्मा बिना स्थूल शरीर के न तो दिखाई दे सकता है, और न बिना शरीर के सम्बन्धित कार्य कर सकता है। यही सूक्ष्म शरीर का हाल है। रही गण्डे, तावीज, झाड़ा फूंकी और भूत-प्रेत उतारने की बात सो यह भी कोरा ढोंग है। गण्डे, तावीज, झाड़ा फूंकी करने से रोग दूर हो जाते या बच्चे जीवित हो जाते तो गण्डे तावीज और झाड़ा फूंकी करने वालों के बच्चे न तो कभी रोगी होते और न कभी मरते। परन्तु देखा यह जाता है उनके बच्चे भी मरते हैं, और वे स्वयं भी काल के ग्रास हो जाते हैं। यदि झाड़ा-फूंकी से काम चल जाता, तो डाक्टर और वैद्यों की जरूरत ही क्या थी, और क्या औषधालय और अस्पतालों की जरूरत थीं ? किसी के सिर पर भूत-प्रेत या देवी-देवता आने की कलई तब खुल जाती है, जब कोई कठिन प्रश्न उससे किया जाता है। उनकी परीक्षा करने वालों को चाहिए कि यदि हिन्दू देवता किसी के सिर पर आया हो तो उससे वेद-मन्त्र का अर्थ पूछना चाहिए और इस्लामी देवता सैयद, पीर किसी पर आया हो, तो 'कुरान' की आयत पढ़वानी चाहिए। ऐसा करने से उसके सारे ढोंग और बहाने प्रकट हो जायेंगे। प्रायः बहुत सी बातें ऐसी भी होती हैं जिन्हें चालाक आदमी कर दिखाते है। जब लोगों की समझ में वे बातें नहीं आतीं, तो वे समझते हैं, कि उसने भूत-प्रेत वश में किया हुआ है। पर वास्तव में भूत-प्रेत की कोई सत्ता नहीं है। यह सिर्फ वहम है, जो अज्ञानी अन्धविश्वासी मनुष्यों को सताता है। प्रत्येक मनुष्य को विश्वास रखना चाहिए कि जो

'भोग' में है वह अवश्य भोगना पड़ेगा। उसको कोई नहीं टा
सकता। न्याय करने वाला परमात्मा सर्वत्र मौजूद है। संसार
किसी दूसरे की शक्ति नहीं है कि बिना कर्मों या बिना पूर्व जन
से संस्कार के ईश्वर की न्याय-व्यवस्था के विरुद्ध किसी को अच्छा
बुरा फल दे सके।

—×—

क्या सुख दुःख ग्रहों से होते हैं ?

कमल—अच्छा, भूत-प्रेत योनि न सही, लेकिन सुख-दुःख ग्र
के कारण तो होता ही है। नव ग्रहों का फल तो भोगना ही पड़
है। ज्योतिष की बात तो झूठ नहीं हो सकती। ज्योतिष विद्या
महीनों वर्षों आगे आने वाले सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण आदि
हाल सच्चा बता देती है।

विमल—सुख दुःख ग्रहों के कारण नहीं होता, अपने-अ
कर्म फलों के कारण होता है। जितने भी ग्रह हैं वे न किसी को दु
देते हैं और न किसी को सुख देते हैं। समस्त ग्रह पृथ्वी पर अप
प्रभाव तो अवश्य डालते हैं, परन्तु उस प्रभाव से जो सुख-दुख मिल
है या वस्तुओं में जो परिवर्तन होता है, वह उन वस्तुओं की अप
ही अवस्था के कारण होता है। जैसे सूर्य ग्रह है उसका प्रकाश स
हो रहा है। अब एक वृक्ष पृथिवी में लगा हुआ है पास में ही दूस
कटा हुआ पड़ा है। सूर्य की किरणें दोनों वृक्षों पर पड़ रही हैं। पर
जो कटा हुआ वृक्ष है, वह सूख रहा है और जो जमीन में लगा हु
है, वह बढ़ रहा है। जब किरणें दोनों वृक्षों पर समान रूप से
रहीं हैं तो एक वृक्ष में क्षीणता क्यों हैं, और दूसरे में वृद्धि क्यों है
वही सूर्य का प्रकाश पत्थर पर पड़ रहा है वही बर्फ पर पड़
है। परन्तु पत्थर में सख्ती आ रही है बर्फ घुल रही है। उसी सूर्य
प्रकाश में स्वस्थ नेत्रों वाला व्यक्ति सुन्दर-सुन्दर दृश्यों को देख
प्रसन्न होता है परन्तु जिसकी आँख दुखनी आई हुई हैं उसे वही

का प्रकाश सुखदायी प्रतीत हो रहा है। अब बताओ इसमें सूरज ने कुछ कर दिया है ? सूरज का क्या दोष है ? जैसी जिस चीज की अवस्था है, उसी के अनुसार उसमें परिवर्तन और हानि लाभ हो रहा है। देखो ! ज्योतिष के दो अङ्ग माने जाते हैं--गणित और फलित। जहाँ तक गणित का सम्बन्ध है, वह सच्चा है और फलित अनुमान की चीज होने के कारण झूंठा है। सूर्य ग्रहण या चन्द्रग्रहण गणित से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए महीनों वर्षों पहले बताये जा सकते हैं। सृष्टि के आदि से लेकर अन्त तक सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह अपना २ कार्य नियम पूर्वक करते हैं। इसलिए उनका गणित बना हुआ है। ज्योतिष के विद्वान् ग्रहों की गति का ज्ञान रखते हैं। उन्हें स्पष्ट पता चल जाता है कि अमुक समय चन्द्रमा की छाया सूर्य पर या पृथ्वी की छाया चन्द्र पर पड़ेगी। अतः अमुक समय में ग्रहण पड़ेगा। जिस चीज में भी नियमपूर्वक गति है, उसके परिणाम का पता गणित से तत्काल हो जाता है। जैसे घड़ी में नियमपूर्वक गति है। बच्चा भी जिसे घड़ी देखना आता है फौरन कह देगा कि 'बारह बजने में अभी इतनी देर है। एक बजने में अभी इतनी मिनट बाकी हैं।' घड़ी की सुइयाँ चाहे किन्हीं अंकों पर हों परन्तु प्रत्येक मनुष्य कह देगा कि बारह तभी बजेंगे, जब दोनों सुइयाँ बारह के अङ्क पर आ जायेंगी। इसका पता क्यों चल जाता है ? इसलिए कि घड़ी में नियम पूर्वक गति हो रही है। वास्तव में ज्योतिष गणित की विद्या है, लोगों ने उसमें फलित को जोड़कर बदनाम कर दिया है।

कमल—ज्योतिषी जी जन्म पत्र लिखते हैं, जन्म कुण्डली निकालकर नवग्रहों का हाल सुनाते हैं। जिस पर जो ग्रह खड़े होते हैं फौरन बता देते हैं। मैंने कई बार देखा है, किसी पर शनि की ढैया, किसी पर साढ़सती, किसी पर मारकेश की दशा, किसी पर राहू केतू का कोप, कहीं पर दिशा शूल, कहीं योगिनी चक्र आदि का हाल खूब बताते हैं। यहीं तक नहीं, तेजी, मन्दी, हानि-लाभ गढ़ा हुआ धन, रोजगार, हारजीत, लाटरी मुकदमा तथा भूत, भविष्य, वर्तमान

तीनों कालों की बात बताते हैं। क्या यह सब बातें सत्य नहीं हैं ?

विमल—मित्र, तुम निश्चय पूर्वक जानो, यह सारी की सारी भ्रम में डालने की बातें हैं। लोगों ने कमाने खाने का धूर्ततापूर्ण ढङ्ग निकाला हुआ है और कुछ नहीं। भगवान् की व्यवस्था के अनुसार जो भोग में है वह कभी नहीं टल सकता। मैं पहले ही तुमसे कह चुका हूं कि ग्रह स्वयं किसी को सुख-दुःख नहीं देते, क्योंकि वे जड़ हैं। सुख-दुःख तो कर्मों के कारण मिलता है। देखो! अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक ज्योतिषी हैं। यहाँ प्रत्येक कार्य में ग्रह और नक्षत्र देखे जाते हैं, परन्तु फिर भी भारत सर्वाधिक दीन-हीन और दुःखी है। सब देशों से अधिक बेकारी और नंगे-भूखे भारत में ही मिलेंगे। यह ढाई करोड़ जो विधवायें भारत में हैं, क्या संसार के किसी और देश में भी हैं। इनके विवाह पोथी पत्रा देखकर ही तो किये गये थे ? राशि, वर्ग, लग्न आदि सब ही कुछ तो पण्डित ने गिलवाये थे। फिर इतनी विधवायें कैसे बन गईं। ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ ने ग्रह मुहूर्त देख कर लग्न रखा कि प्रातःकाल रामचन्द्र की राजगद्दी होगी। परन्तु कर्मों की गति अर्थात् भोग ऐसा प्रबल निकला कि प्रातःकाल होते ही राम वनवासी हो जाते हैं, दशरथ प्राण छोड़ते हैं। रानियाँ विधवा होती हैं। सीता चुराई जाती है! सूरदास ने इसीलिए कहा है—

'करम गति टारे नाहिं टरै।
गुरु वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी रुचि २ लगन धरै।
सीता हरन, मरन दशरथ को विपत पै विपत परै।

इसी प्रकार तुलसीदास ने कहा है—

लग्न मुहूरत योग ग्रह 'तुलसी' गिनत न काहि।
राम भये जिहि दाहिने सबहि दाहिने ताहि॥

इसी प्रकार ग्रहों के चढ़ने उतरने की बात भी बड़ी विचित्र है। देखो जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, उसकी परिधि २५००० मील की है। सूर्य पृथ्वी से १३ लाख गुणा बड़ा और बोझ में ३३३४३२ गुणा बड़ा है। यदि हम सौ मील प्रति घण्टे की चाल से

चलने वाले हवाई जहाज पर अहर्निशि चलें तो पृथ्वी से सूर्य तक पहुँचने में १०५ वर्ष लगेंगे। सूर्य से भी बड़े बृहस्पति आदि ग्रह आकाश में हैं। बहुत से ग्रह ऐसे है, जिनका प्रकाश पृथ्वी तक आने में लाखों करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। अब सोचो ऐसे ग्रहों का किसी पर चढ़ना कैसे सम्भव हो सकता है ? और फिर मजे की बात यह है कि ग्रह चढ़े हुए तो लाला जी पर होते हैं और मालूम पण्डित जी को होते हैं। किसी मनुष्य पर चींटी चढ़ जाती है तो उसे मालूम पड़ जाती है, साँप, बिच्छू चढ़ जाता है तो उसे मालूम पड़ जाता है। यदि हाथी घोड़ा चढ़ जाता है, तो मालूम ही नहीं होता बल्कि कचूमर निकल जाता है। परन्तु इन जानवरों से असंख्यों गुना बड़े ग्रह ऊपर चढ़े हुए मालूम ही नहीं देते, यह कैसे आश्चर्य की बात है ! वास्तव में यह कोरा ठगों का जाल है, इसमें कोई सार नहीं। जो कुछ भोग और भाग्य में होता है, वही मिलता है। दिशा-शूल आदि भी ढोंग ही है। आज रेल और मोटरों ने सारा दिशाशूल तोड़ दिया। कल्पना करो, किसी का मुकदमा कलकत्ता में चल रहा है। जिस दिन की तारीख है, पण्डित ने कहा, आज न जाओ, दिशाशूल है। यदि वह व्यक्ति उस रोज कच-हरी में उपस्थित नहीं होता, तो दिशाशूल जाकर क्या उसकी पैरवी करेगा ? हर्गिज नहीं। एक सेठ का बम्बई से तार आया फौरन चले आओ, नहीं तो कई लाख का घाटा हो जायगा। सेठ चलने को तैयार हुए, पुरोहित ने कहा 'आज का दिन ठीक नहीं' दूसरे दिन घर से निकले तो बिल्ली रास्ता काट गई। तीसरे दिन मोटर तक पहुँचे और चढ़ने ही वाले थे कि एक मनुष्य छींक बैठा। चौथे दिन घर से चलने लगे, कि बम्बई से तार आ गया कि आपके न आने से २० लाख रुपये का घाटा हो गया है। देखा मित्र, बहमों का कैसा भयङ्कर परिणाम निकला ! जो ज्योतिषी गढ़ा हुआ धन और गुप्त बातों के बताने की बात कहते हैं, उनको कोरा ठग समझना चाहिए। यदि पृथ्वी में गढ़े हुए धन को बता सकते हैं, तो पृथ्वी में अरबों रुपयों की सम्पत्ति दबी पड़ी है, स्वयं ही क्यों न उखाड़ लिया करें। ज्योलौजी (Geology)

अर्थात् भूगर्भ विद्या के विद्वानों को क्यों माथा पच्ची करनी पड़े। यदि इन ज्योतिषियों को ही पृथ्वी के भीतर की सारी बातें मालूम हो जाया करें, तो संसार के देशों की सरकारें जो अरबों रुपया इस विभाग में खर्च करती हैं, क्यों किया करें ? क्यों नहीं थोड़े से रुपयों में ही ज्योतिषियों से ही काम चला लिया करें ? अतएव किसी व्यक्ति को इन बातों में नहीं पड़ना चाहिए। अपने कर्म-फल और ईश्वर की न्याय-क़ारिता में अटल विश्वास रखकर बुद्धिपूर्वक शुभ कर्म करना चाहिए। यही मनुष्यता है।

कमल—मित्र, अब यह बताओ, कि श्राद्ध करना चाहिए या नहीं ?

विमल—इस पर कल विचार होगा।

—:※:—

सातवाँ दिन : प्रातःकाल

श्राद्ध करना चाहिए या नहीं ?

कमल—मित्र, आज यह बताओ, श्राद्ध करना चाहिए या नहीं ?

विमल—श्राद्ध करना चाहिए। जीवित माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, गुरु आचार्य तथा अन्य वृद्धजनों एवं तत्ववेत्ता विद्वान् लोगों की अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिए, इसी का नाम 'श्राद्ध' है।

कमल—'श्राद्ध' तो मरे हुए पितरों का होता है, जीवित का भी कहीं श्राद्ध होता है ?

विमल—पहले यह सोचो 'पितर' शब्द का अर्थ क्या है ? पितर का अर्थ है रक्षा करने वाला। रक्षा तो वही कर सकता है जो जीवित हो। जीवित ही अपनी सन्तानों को उपदेश दे सकते हैं, और अपने जीवन के अनुभव द्वारा संसार के व्यवहारों का ज्ञान करा सकते हैं। जीवित ही स्वसंतानों की सर्व प्रकार रक्षा कर सकते हैं, मरने पर तो

पितर, पितर ही नहीं रहता, क्योंकि पितर न तो आत्मा है और न शरीर है। आत्मा और शरीर के संयोग विशेष का नाम है। जब मृत्यु ने दोनों का सम्बन्ध छुड़ा दिया तो पितर रह कहाँ गया ? यदि आत्मा का नाम पितर हो तो आत्मा नित्य और अविनाशी न रहेगा, नाशवान् हो जायगा। क्योंकि पितर मानने पर उसमें आयु का और छोटे बड़े का भेद मानना पड़ेगा। एक आत्मा की उत्पत्ति पहले माननी होगी, दूसरे आत्मा की उत्पत्ति पश्चात् माननी होगी। यदि ऐसा न मानोगे तो 'पितर' शब्द का आत्माओं से सम्बन्ध ही न जुड़ेगा। जब सम्बन्ध ही न जुड़ेगा, तो श्राद्ध किया किसका जायगा ? फिर आत्मा को तो सभी लोग अविनाशी मानते हैं, अतः उसमें आयु का और छोटे बड़े का भेद ही नहीं हो सकता। रहा शरीर, उसको भी 'पितर' नहीं कह सकते। प्रथम तो आत्मा के निकलते ही शरीर की 'शव' संज्ञा हो जाती है, दूसरे यदि शरीर 'पितर' होता भी तो उसे दबाने या जलाने वाले को भारी पाप लगता। क्योंकि मरने पर या तो शरीर दबाया जाता है या जला दिया जाता है। किसी पितर को जमीन में दबा देना या जला देना कोई पुण्य का काम नहीं हो सकता। परन्तु मृतक शरीर को दबाना या जलाना लोग पुण्य समझते हैं। वास्तव में नाते रिश्ते और पितर आदि सम्बन्ध इस संसार से ही सम्बन्ध रखते हैं। मरने पर न कोई किसी का पितर है न कोई किसी की सन्तान है। सब जीव अपना-अपना कर्म-फल भोगने के लिए संसार क्षेत्र में आते हैं। शरीर धारण करने पर एक दूसरे से अनेक प्रकार के सम्बन्ध जुड़ जाते हैं। यदि कहीं मरने के पश्चात् भी जीवों के साथ माता-पिता, बहिन भाई आदि के सम्बन्ध बने रहते हैं, तो पुनर्जन्म में माता का पुत्र से, बहिन का भाई से, बेटी का बाप से विवाह होना सम्भव हो जायगा। इसलिए जीव से माता-पिता आदि का सम्बन्ध नहीं है, जीव और शरीर के संयोग विशेष से सम्बन्ध है। अतः श्राद्ध जीवितों का ही होता है।

कमल—वर्ष भर में १५ दिन श्राद्ध के निश्चित हैं कभी किसी

पितर का श्राद्ध किया जाता है, कभी किसी का किया जाता है। पितर लोग सूक्ष्म शरीर धारण करके श्राद्ध के दिनों में आते हैं और ब्राह्मणों के साथ ही भोजन करते हैं। यदि कभी पितृ लोक से पितर न भी आ सके तो ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन उन्हें मिल जाता है।

विमल—जब मैं बता चुका हूँ कि 'पितर' नाम आत्मा या शरीर का नहीं है, आत्मा और शरीर के विशेष सम्बन्ध का नाम है। फिर यह कहना कि पितर सूक्ष्म शरीर धारण कर भोजन करने आते हैं, सरासर हठ और अविवेक का परिचय देना है। अच्छा चलो थोड़ी देर के लिए मान भी लें कि पितर सूक्ष्म शरीर धारण कर आते भी हैं, परन्तु यह तो बताओ बिना स्थूल शरीर के वे भोजन कर कैसे लेते हैं, क्या सूक्ष्म शरीर से भोजन कर सकना सम्भव है ? और जब ब्राह्मणों के साथ भोजन करते हैं तो पहले पितर खाते हैं या पहले ब्राह्मण खाते हैं ? यदि ब्राह्मण पहले खाते हैं तो पितर झूँठा खाते हैं। यदि दोनों मिल कर खाते हैं तो एक दूसरे का झूँठा खाते हैं। झूँठा खाना स्वास्थ्य और सिद्धान्त दोनों दृष्टियों से निन्दनीय है। अच्छा साल भर में १५ दिन ही क्यों निश्चित हैं ? क्या साढ़े ग्यारह महीने उन्हें भूख नहीं लगती ? क्या १५ दिन के भोजन से ही साल भर तक तृप्त बने रहते हैं ? क्या ऐसा हो सकता है ? यदि हो सकता है तो किसी मनुष्य को १५ दिन खिला कर साल भर तक बिना भोजन के जीवित रहता हुआ दिखाओ। और १५ दिन भी कहाँ ? श्राद्ध के १५ दिन निश्चित् हैं, इसमें भी केवल एक दिन पितरों के परिवार वाले निकालते हैं। दूसरे यदि ब्राह्मणों को खिलाने से मृतक पितरों को भोजन पहुँच जाता है, तो भोजन करने पर ब्राह्मणों का पेट क्यों भर जाता है, ब्राह्मणों को तो भोजन करने पर भी भूखा ही रहना चाहिए। जब भोजन उन्होंने पितरों को पहुँचा दिया तो फिर उनका पेट कहाँ भरा ? श्राद्ध खाने वाले ब्राह्मणों से जरा यह पूछ लिया करो कि जिन पितरों को भोजन पहुँचाना है, वे हैं कहाँ ? साथ

ही वह रोगी हैं या तन्दुरुस्त हैं ? यदि वह रोगी ही हों तो फिर उनको हलुआ, पूड़ी और खीर से क्या प्रयोजन है ? उन्हें कड़वी दवा और मूंग की दाल का पानी चाहिए। भारी भोजन से तो वह और अधिक रोगी हो जायेंगे। जब किसी को यह पता नहीं कि मृत्यु के पश्चात् पितर आत्मा किस योनि में गया है और किस अवस्था में है, तो खीर पूड़ी ब्राह्मणों द्वारा भेजने का मतलब ही क्या है ? यदि श्राद्ध के दिनों में किसी का पितर किसी योनि से स्वयं ही सूक्ष्म शरीर से भोजन करने आवे भी तो जिस योनि से आयेगा उसकी तो मृत्यु हो जानी चाहिए। थोड़ा और विचारो कि एक आत्मा तत्व-ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो गया, उसे संसार के भोजन की क्या चिन्ता ? एक आत्मा कर्म वश शेर या भेड़िया बना हुआ है, दूसरा विष्ठा या नाली का कीड़ा बना हुआ है, इन प्राणियों का हलुआ और पूड़ी से क्या काम चलेगा ? प्रत्येक प्राणी का अपना भिन्न २ प्रकार का स्वादिष्ट भोजन है। सबका मनुष्य जैसा तो भोजन नहीं होता।

देखो ! यदि कोई आदमी किसी आदमी के पास पत्र डाल रहा हो, परन्तु उसका पता न जानता हो, सारा मजबून लिखकर बिना पते का पत्र 'लैटरबक्स' में छोड़ दे तो क्या वह उसकी अक्लमन्दी होगी और क्या वह पत्र उस आदमी के पास पहुँच भी जायगा ? कदापि नहीं। फिर बिना पता निशान के ब्राह्मणों को खिलाने से पितरों के पास कैसे भोजन पहुँच जायगा ? यह तो कोरा अन्धविश्वास है। एक व्यक्ति को खिलाने से अगर दूसरे व्यक्ति के पास भोजन पहुँच जाता तो परदेश जाने वाले को भोजन बाँधकर ले जाने की आवश्यकता ही क्या थी ? घर पर ब्राह्मणों को खिला दिया जाता परदेश जाने वाले का पेट स्वतः भर जाता। अतएव मृतक पितरों का श्राद्ध करना बिल्कुल व्यर्थ और अपने आपको धोखा देना है।

कमल—मित्र, आपने तर्क द्वारा यह सिद्ध किया है कि मृतक पितरों का श्राद्ध नहीं होता और न एक का दिया दूसरे को मिलता

है, परन्तु मुझे यह तो बताओ किसी पुत्र का पिता ऋणी होकर मर जाता है। वह ऋण का पाप अपने ऊपर ले गया है। पुत्र थोड़े समय बाद धनवान् हो जाता है और वह पिता का ऋण चुका देता है। अब बताओ मृतक की आत्मा ऋण रूप पाप से मुक्त हुई या नहीं ? जब पुत्र ने कर्जा चुका ही दिया फिर पिता ऋणी रहा ही कहाँ ? जब पुत्र द्वारा पिता की आत्मा ऋण के पाप से मुक्त हो सकती है तो पुत्र द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराने पर पिता की भोजन सम्बन्धी तृप्ति क्यों नहीं हो सकती ?

विमल—तुम्हें निश्चय पूर्वक जानना चाहिए कि पिता के कर्म का फल पुत्र को और पुत्र के कर्म का फल पिता को कभी नहीं मिलता। मनुष्य जो भी अच्छे बुरे कर्म करता है, उसके संस्कार सूक्ष्म शरीर पर पड़ते हैं, वही संस्कार उसका सुख-दुःख रूप 'योग' बनाते हैं और वह भोग बिना भोगे नहीं टल सकता। लौकिक दृष्टि से पुत्र पिता का ऋण तो चुका देगा, लेकिन जहाँ तक के संस्कार जो पिता की आत्मा पर पड़े हैं, उन्हें पुत्र कैसे मिटा सकेगा ? वह तो उसके बस की बात नहीं। किसी भी मनुष्य के मन पर संस्कार उसी की करनी से पड़ते हैं और उसी की करनी से धुल सकते हैं। उन्हें दूसरा कैसे धो सकता है ? पुत्र लेन-देनकी दुनियाँ का तो इलाज कर लेगा परन्तु पिता की सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखने वाली दुनियाँ का इलाज कैसे कर सकेगा। यदि यह मान लिया जाय, कि ऋण चुका देने से पिता की आत्मा पर पड़े हुए ऋण के संस्कार भी नष्ट हो जाते हैं तो जो पिता करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति धर्म से कमा कर मर गया है और धर्म से धन कमाने के संस्कार साथ ले गया है, परन्तु उसका पुत्र नालायक निकला, उसने पिता के धर्म से कमाये हुए धन को शराब-खोरी और दुराचार आदि में उड़ा दिया। इस पाप से उसकी सर्वत्र निन्दा हो रही है। अब बताओ, उसका फल मृतक पिता की आत्मा को मिलेगा या नहीं ? क्योंकि पुत्र ने पिता के धन से ही पाप किया है ! यदि पिता के कमाये हुए धन से पाप करने पर पिता की आत्मा

को पाप नहीं लग सकता, तो पिता के लिए हुए ऋण को चुकाने से पिता के ऋण के संस्कार कैसे टल जायेंगे ? पिता का ऋण तो पुत्र इसलिए चुकाता है कि जहाँ वह देनदार है, वहाँ लेनदार भी है। जब पुत्र पिता की सम्पत्ति लेने का अधिकारी है तो देने का अधिकारी कौन होगा ? जो लेगा वही देगा भी यह तो मनुष्य समाज का एक नियम है, जो चल रहा है। किन्ही-किन्हीं देशों में यह नियम नहीं भी है। योरुप के कई देशों में यह नियम नहीं है। उन देशों में संयुक्त परिवार की प्रथा नहीं है। माता-पिता सन्तान का तब तक पालन करते हैं जब तक उनकी सन्तान स्वतन्त्रता से जीवन व्यतीत करने योग्य नहीं बन जाती। जहाँ योग्य हुई फिर माता-पिता और सन्तान का कोई वास्ता नहीं रहता। न कोई किसी का लेनदार रहता है न कोई किसी का देनदार। वहाँ ऋण चुकाने न चुकाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्जे का स्वयं ही जिम्मेदार है। इसलिए यह कहना कि ऋण आदि का पिता की आत्मा पर चढ़ा हुआ पाप पुत्र धो देता है, सर्वथा मिथ्या है। इस सृष्टि में कौन किसका ऋणी है और किस रूप में ऋणी है—इसकी व्यवस्था भगवान् ही जानता है और वही एक दूसरे का ऋण चुकाने की कर्मानुसार व्यवस्था करता है। सृष्टि के बहुत से काम किसी के लिए साध्य हैं और किसी के लिए साधन हैं। परन्तु यह निश्चित है कि एक के किये हुए कर्म का फल दूसरे को नहीं मिलता।

देखो ! श्राद्ध के दिनों को 'कनागत' या 'कर्णागत' भी कहा जाता है। एक पौराणिक गाथा है—सुवर्णदान करने वाले कर्ण को स्वर्ग में स्वर्ण ही मिला। जब उसकी भूख दूर न हुई तो उसने १५ दिन छुट्टी ली और मृत्यु लोक में आकर ब्राह्मणों को भोजन कराया तब स्वर्ग में उसको अन्न खाना सम्भव हुआ। कर्ण के लौटकर आने से ही 'कनागत' या 'कर्णागत' नाम पड़ा। यद्यपि यह कथा सृष्टि क्रम के विरुद्ध होने से मिथ्या है, तथापि उस कथा से यह परिणाम निकाला जा सकता है, कि अपने कर्मों का फल अपने को ही भोगना पड़ता है।

कर्ण स्वयं ही स्वर्ग से लौटा और स्वयं अन्न दान किया, तब अन्न खाने को मिला, नहीं तो कर्ण के सम्बन्धी मृत्यु लोक में ब्राह्मणों को खिला देते स्वर्ग में कर्ण को प्राप्त हो जाता।

कमल—अच्छा मित्र, अगर मृतक पितरों को भोजन नहीं मिलता न सही, परन्तु मृतक पितरों के नाम पर भोजन कराने में हानि ही क्या है ? इसी बहाने कुछ दान बन जाता है। उनकी यादगार में कुछ न कुछ पुण्य हो ही जाता है।

विमल—हानि क्या ? हानि यह है कि वैदिक सनातन मर्यादा का नाश होता है। यदि कहो, क्यों ! इसलिए कि—'पितृयज्ञ' अर्थात् पितरों का सत्कार 'नित्य कर्म' के अन्दर आता है। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ अतिथि यज्ञ, बलि वैश्वयज्ञ तथा पितृयज्ञ—इन पाँच यज्ञों को यथा-शक्ति नित्य ही करना चाहिए। ऐसी वैदिक शास्त्रों की आज्ञा है। यदि मृतक श्राद्ध की १५ दिन की तिथियाँ निश्चित की जाती हैं और उसका नाम 'पितृपक्ष' रखा जाता है, तो नित्य मर्यादा का खण्डन हो जाता है।

मृतक श्राद्ध तो वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार भी नहीं हो सकता क्योंकि पुत्र जब ब्रह्मचर्य आश्रम में होगा, तो पिता गृहस्थाश्रम में होगा। इसी तरह जब पुत्र गृहस्थाश्रम में होगा तो पिता वानप्रस्थ में होगा इसी तरह जब पुत्र वानप्रस्थ में होगा, तब पिता संन्यास में होगा, और जब पिता की मृत्यु का समय होगा, तब पुत्र संन्यासी होगा। अब सोचो संन्यासी कैसे मृतक श्राद्ध कर सकेगा ? क्योंकि उसने तमाम सकाम भावनाओं का त्याग कर दिया है, तभी तो संन्यासी बना है। संन्यासी से पारिवारिक सम्बन्ध रहता ही नहीं न वह किसी का पिता रहता है न पुत्र, फिर श्राद्ध कैसा ? और संन्यासी तो परिव्राजक होता है। सदुपदेश करते हुए भ्रमण में कब (किसी तिथि को) और कहाँ मृत्यु हो गई, इसका पता भी पिता पुत्र तथा अन्य घर वालों को कैसे लगेगा ? अतः किसी प्रकार भी मृतकों का श्राद्ध सिद्ध नहीं होता। रही दान और पुण्य हो जाने की बात सो

पितरों यानी बुजुर्गों की यादगार में खिलाना-पिलाना या दान देना बुरा नहीं, यदि पात्र और कुपात्र को देखकर ऐसा किया जाय। परन्तु जो काम बहाने बनाकर किया जाता है, उसका परिणाम शुभ नहीं निकलता, क्योंकि हृदय में सच्चाई न होने के कारण दान करने वाले की आत्मा पर अच्छा संस्कार नहीं पड़ता। जो मन में हो, वही वाणी पर हो तथा वैसा ही कर्म किया जाय, तब वह पुण्य का काम कहलाता है। बहाने से किया दान न दान है, और न पुण्य, पुण्य है। जो भी काम होना चाहिए, सद्भावना और सचाई से होना चाहिए और बिना विचारे दान-पुण्य करना तो संसार में आलसियों और निकम्मे लोगों की तादाद बढ़ाना है, और कुछ नहीं। यदि अपने पूर्वजों की यादगार में खिलाना, पिलाना या दान देना आवश्यक है तो क्या आवश्यक है कि क्वार के महींने में ही १५ दिन की निश्चित तिथि में भोजन कराया जाय और दान दिया जाय ? और वह भी केवल ब्राह्मणों को ही कराया जाय ? क्यों नहीं नंगे, भूखे, लंगड़े, लूले-अपाहिज व्यक्तियों को चाहे वे किसी देश और जाति के हों उन्हें भोजन और दान दिया जावे ? पितरों की यादगार में तो बात तब ठीक हो सकती है जब उसी तारीख के आने पर उनकी यादगार में कुछ किया जाय। जैसे रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी उसी तारीख में मनाई जाती हैं जिस तारीख में उनका जन्म हुआ है। इसी प्रकार पितरों की यादगार उसी तारीख में मनाई जाय जिस तारीख में वे मरे हैं तब तो मान लिया जाय कि हाँ यादगार के लिए यह श्रद्धा दिखाई जा रही है, अन्यथा मृतक श्राद्ध ढोंग ही है।

कमल—मित्र, आपने इसका खूब विवेचन किया। धन्यवाद ! अब मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस यज्ञ के करने से क्या लाभ हैं, लोग घी और सामग्री अग्नि में क्यों फूंक देते हैं ?

विमल—इसका उत्तर कल दूंगा।

—×—

आठवाँ दिन : प्रातःकाल

यज्ञ और यज्ञोपवीत

विमल—तुम्हारा कल का प्रश्न था, यज्ञ क्यों करना चाहिए ? यज्ञ करने से अनेक लाभ हैं। यह घी-सामग्री का व्यर्थ फूंकना नहीं है। यज्ञ में घृत और सामग्री जो जलाई जाती है वह वायुमण्डल को शुद्ध बना देती है, वायु के शुद्ध होने से रोगों की सम्भावना नही रहती।

कमल—यज्ञ से वायु कैसे शुद्ध हो जाती है ?

विमल—यज्ञ की सामग्री में चार प्रकार के पदार्थों का समावेश होता है—रोगनाशक, सुगन्धित, मीठे और पष्टिकारक। इन पदार्थों से जब यज्ञ किया जाता है, तो वायुमण्डल में स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले जो कीटाणु होते हैं वे मर जाते हैं। इसी का नाम वायु शुद्ध हो जाना है। इसी यज्ञ द्वारा वर्षा शुद्ध होने की सम्भावना रहती है, जिससे अन्न और औषधियाँ गुणकारी होती हैं, फलत समस्त प्राणियों का कल्याण होता है।

कमल—मेरे विचार में तो रोगनाशक और पौष्टिक पदार्थ यदि खायें तो अधिक लाभ हो सकता है। जलाकर पदार्थों को नष्ट क्यों किया जाय ? और भला यज्ञ द्वारा वर्षा होने की सम्भावना कैसे हो सकती है ?

विमल—मेरा मतलब यह नहीं कि पौष्टिक और रोगनाशक पदार्थ खाये न जायें। उन्हें यथोचित खाना भी चाहिए और उनसे यथाशक्ति यज्ञ भी करना चाहिए। जहाँ पदार्थों द्वारा शरीर को पुष्ट करना आवश्यक है वहाँ पदार्थों द्वारा वायु शुद्ध करना और भी आवश्यक है। यदि कोई मनुष्य वायु को शुद्ध नहीं करता तो वह पापी है, क्योंकि जब वह वायु को गन्दा करता है तो वायु को शुद्ध करना भी उसका धर्म है। देखो ! शरीर से जो कुछ निकलता है गन्दा ही त

होता है—आँख से कीचड़ निकलता है वह गन्दा, कान से जो मैल निकलता है वह गन्दा, मुँह और नाक से जो मैल निकलता है वह गन्दा, पसीना निकलता है वह गन्दा, मल-मूत्र निकलता है वह गन्दा, इसी तरह से जो वायु निकलती है, वह गन्दी है। मनुष्य बाहर से अन्न, जल, वायु, फल, आदि जो भी ग्रहण करता है वे पवित्र पदार्थ हैं। पर वे पदार्थ शरीर के भीतर से गन्दे होकर निकलते हैं और बाहर की वायु को गन्दा बनाते हैं। यह मानी हुई बात है कि वायु ही प्राणियों का जीवन है। भोजन और जल के विना दो चार दिन और कभी २ इससे भी अधिक समय तक लोग जिन्दा रह सकते हैं। लेकिन वायु के बिना एक घण्टा भी जिन्दा नही रह सकते। जब वायु प्राणियों की जिन्दगी का आधार है, तो उसका शुद्ध रहना कितना आवश्यक है? जब वायु अशुद्ध हो जाती है तो कितनी बीमारियाँ फैल जाती हैं। ये प्लेग और हैजा आदि रोगों के फैलने का कारण गन्दी वायु ही तो है। मरीज के शरीरों के कीटाणु और चूहों के पेट के कीटाणु भी तो वायु में मिल जाते हैं और भयङ्कर बीमारियों को जन्म देते हैं। इसलिए वायु को शुद्ध बनाने के लिए यज्ञ या हवन से बढ़कर दूसरा उपाय क्या हो सकता है?

तुम्हारा जो यह कहना है कि जलाकर पदार्थों को नष्ट क्यों किया जाता है, वास्तव में यह नासमझी की बात है। संसार में किसी चीज का नाश नहीं होता। केवल रूप बदल जाता है। देखो! पानी जल जाने पर मूर्ख मनुष्य तो समझता है, यह नष्ट हो गया, परन्तु बुद्धिमान् जानता है, यह भाप बनकर वायु में मिल गया, नष्ट नहीं हुआ। इसी प्रकार यज्ञ की सामग्री जलकर नष्ट नहीं होती। वह सूक्ष्म होकर वायु का संशोधन करने तथा वायु में मिली हुई भाप को शुद्ध बादल के रूप में जमाने का काम करती है। भाप को जमाने के लिये घी तो 'जामन' का काम करता है। जैसे सैकड़ों मन दूध को जरा सा दही जमा देता है वैसे ही घृत जिसे सूर्य की तीक्ष्ण से तीक्ष्ण

किरणें भी नहीं सुखा सकतीं, उसको जमाकर वर्षा का कारण बनाता है। अगर लोग विधि और नियम पूर्वक हवन करें, तो निश्चय पूर्वक ठीक समय पर वर्षा हो सकती है। प्राचीन समय में अत्यन्त विधि पूर्वक यज्ञ होते थे, इसलिए खूब वर्षा होती थी, फलतः अकाल नहीं पड़ा करते थे और न आजकल जैसे रोग फैलते थे।

कमल—क्या घर में सुगन्धित और रोगनाशक पदार्थ रखना नहीं चाहिए ? क्या उनसे वायु शुद्ध नहीं हो सकती ? जलाने से ही शुद्ध होती है ? जलाने में क्या विशेषता है ?

विमल—घर में सुगन्धित और रोगनाशक पदार्थ अवश्य रखना चाहिए परन्तु उनसे यज्ञ भी करना चाहिए। यज्ञ करने से पदार्थों की शक्ति करोड़ों गुणा अधिक हो जाती है। इसका प्रमाण यह है, कि जैसे एक मनुष्य चार मिर्च खा जाता है, उनकी तेजी और कड़वाहट को आसानी से सहन कर लेता है। परन्तु यदि वही मनुष्य जरा सा टुकड़ा मिर्च का अग्नि में डाल देता है तो उसकी तेजी को वह सहन नहीं कर पाता। खाँसते-खाँसतें परेशान हो जाता है बल्कि गली मुहल्ले वालों की भी नाक में दम आ जाता है। वे कहने लगते हैं कि न जाने आज किस कम्बख्त ने मिर्चें जलाई हैं। परन्तु यदि मनुष्य घृत और उत्तम सामग्रियों से हवन करता है, तो लोग कहते हैं, किसी भाई के यहाँ हवन हो रहा है, जिसकी सुगन्धि आ रही है। अब तुम समझ गये होगे कि जिस वस्तु को अग्नि जलाती है उसकी शक्ति कितनी बढ़ जाती है। यज्ञ से बढ़कर उपकार का दूसरा कर्म नहीं हो सकता। यज्ञ गुप्त दान है। यज्ञ से जहाँ अपने घरों की वायु शुद्ध होती है, वहाँ दूसरों के घरों की भी शुद्धि हो जाती है। वैसे चाहे कोई किसी का दान न ले। परन्तु यज्ञ द्वारा सब एक दूसरे का दान ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि यज्ञ-सामग्री सूक्ष्म रूप में वायु द्वारा सबके घरों में पहुंचती है और रोगाणुओं को नष्ट करती है।

कमल—संसार की दुर्गन्ध और रोग के कीटाणुओं को तो सूर्य

ी रश्मियाँ ही नष्ट कर देती हैं फिर यज्ञ करने की क्या आवश्यकता है? ो काम मनुष्य के किये बिना हो रहा है, उसमें व्यर्थ की मगजपच्ची यों की जाय ?

विमल—मैं पूछता हूँ कि जब सूर्य और चन्द्र मनुष्य के बिना निकाले ही निकल रहे हैं, तो फिर मनुष्य प्रकाश के लिए विजली, ैस लालटेन और दीपक से क्यों काम ले रहा है ? सृष्टि में फल, वन-स्पति, मेवे आदि लगातार उत्पन्न हो रहे हैं, फिर मनुष्य खेती करके अनाज क्यों उत्पन्न कर रहा हैं ? शरीर में स्वयं ही रोगों के दूर होने का भगवान् ने प्रबन्ध कर रक्खा है। हृदय बराबर रक्त शुद्ध कर रहा है, पेट की अंतड़ियाँ बराबर भोजन और जल का विभाजन कर रही हैं तथा क्रमानुसार प्रत्येक इन्द्रिय को उत्तम हिस्सा देकर गन्दा हिस्सा बराबर शरीर से बाहर निकाल रहीं हैं। रोगों को दूर होने का समुचित प्रबन्ध है, फिर क्यों, मनुष्य औषधियों का प्रयोग कर रहा है, और क्यों परहेज से रहने का यत्न कर रहा है ? वास्तव में सृष्टि के यह नियम ही तो मनुष्य को अपने अनुकूल चलाने की प्रेरणा करते हैं, ताकि मनुष्यों का कल्याण हो ! सृष्टि-नियम यह बतलाते हैं कि जैसे सूर्य अपनी रश्मियों से गन्दगी को दूर कर रहा है, वैसे ही गन्दगी को तुम दूर करो। जैसे सूर्य संसार की वायु शुद्ध कर रहा है, वैसे ही वायु को तुम शुद्ध करो। यह यज्ञ आदि परोपकार के काम करने में 'सृष्टि नियम' प्रबल प्रमाण का प्रत्यक्ष परिचय दे रहे हैं।

कमल—अच्छा, यज्ञ करते हुए मन्त्र क्यों पढ़ते हैं ?

विमल—मन्त्रों में यज्ञों का लाभ वर्णन किया है, उन्हे श्रोता-गणों को सुनाया जाता है। दूसरे मन्त्र कण्ठस्थ रहते हैं फलतः वेद की रक्षा होती है। तीसरे जिस चीज को बार-बार पढ़ा जाता है उसमें श्रद्धा भी हो जाती है, श्रद्धा हो जाने पर कार्य में प्रवृत्ति बनी रहती है। कार्य में प्रवृत्ति बनी रहने से आत्मा पर 'कर्मकाण्ड' के उत्तम संस्कार पड़ते रहने के कारण मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य तक पहुँच जाता है।

कमल—अच्छा मित्र, यह बात तो समाप्त हुई । अब यह बताओ, यज्ञोपवीत पहनने से क्या लाभ है ? ये धागे लोग क्यों गले में डाले रहते हैं ? कोई तीन धागे डाले रहता है, कोई छः डाले रहता है, इसमें क्या रहस्य है ?

विमल—यज्ञोपवीत को 'प्रतिज्ञासूत्र' या 'व्रतबन्ध' भी कहा जाता है । इसको पहिन कर मनुष्य कर्त्तव्य पालन करने का व्रत लेता है । वास्तव में यज्ञोपवीत के तीन ही धागे होते हैं । यह धागे एक 'ब्रह्मगाँठ' में बँधे रहते हैं । यह तीनों धागे इस बात की सूचना देते हैं कि प्रत्येक मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण हैं अर्थात् देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण । इन ऋणों को चुकाना चाहिए । देवऋण यह है कि जिस ईश्वर ने मनुष्यों को जन्म दिया है उसकी स्तुति, प्रार्थना उपासना, नित्य नियम पूर्वक करे । जो व्यक्ति सन्ध्या और हवन नहीं करता वह 'देवऋण' से मुक्त नही हो सकता । वैसे सन्ध्या-हवन करने में ईश्वर का कुछ भला नहीं है, अपना ही भला है । क्योंकि सन्ध्या करने से आत्मिक उन्नति होती है और हवन से शारीरिक उन्नति होती है । परन्तु जो मनुष्य उपकार करने वाले का उपकार नहीं मानता, वह 'कृतघ्न' कहलाता है । कृतघ्न मनुष्य किसी का भी विश्वासपात्र नहीं बन सकता । अतएव एक धागा सन्ध्या और हवन अर्थात् 'देवऋण' से उऋण होने की प्रतिज्ञा कराता है । दूसरा धागा 'पितृऋण' अर्थात् माता-पिता की सेवा करने की प्रतिज्ञा कराता है । तीसरा धागा 'ऋषिऋण' से मुक्त होने की प्रतिज्ञा कराता है । अर्थात् जिस गुरु या आचार्य ने विद्याध्ययन एवं अपनी शिक्षाओं और सदुपदेशों से सन्मार्ग दिखाया है, उसकी सेवा सदैव करनी चाहिए, यह सिखाता है। और भी अनेक सूक्ष्म बातें हैं जिनकी प्रतिज्ञा ये 'त्रिसूत्र' या जनेऊ कराता है । जैसे ज्ञान, कर्म और उपासना ये तीन साधन ईश्वर प्राप्ति के हैं । यज्ञोपवीत पहन कर मनुष्य कहता है कि मैं ज्ञान, कर्म, उपासना से ईश्वर की प्राप्ति करूँगा। मैं जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं को पूर्ण करके 'तुरीय' अवस्था में प्रभु से मेल करूँगा ।

प्रकृति के सत्, रज, तम तीनों गुणों से यथावत् लाभ उठाता हुआ जीवन के उद्देश्य परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ूंगा। मैं बड़े छोटे और बराबर वालों से ठीक २ बर्ताव करूंगा। अर्थात् बड़ों का आदर, बराबर वालों से प्रेम, और छोटों पर दया करूंगा। ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातों का प्रतिज्ञाबद्ध आदर्श यज्ञोपवीत सामने रखता है।

कमल—तुम्हारा यह कहना कि यज्ञोपवीत के तीन ही धागे होते हैं, झूठ है। मैंने सैकड़ों को छः तार का पहनते हुए देखा है, दूसरे जितनी भी प्रतिज्ञा की बातें तुमने कही हैं, उन्हें वैसे भी याद रक्खा जा सकता है। इन धागों के बन्धन में मनुष्य को क्यों बांधा जाय ?

विमल—यह मैं मानता हूँ, तुमने छः तार का यज्ञोपवीत पहिनते हुए लोगों को अवश्य देखा होगा। परन्तु वास्तव में तार तीन ही होते हैं। प्राचीन काल में यज्ञोपवीत स्त्रियाँ भी पहनती थीं और वेदादि सत्शास्त्रों का अध्ययन करती थीं, परन्तु कालचक्र के प्रवाह से स्वार्थी पुरुष-समाज ने स्त्रियों के यज्ञोपवीत पहनने और वेदाध्ययन करने का अधिकार छीन लिया। जो स्त्रियों का यज्ञोपवीत था वह भी अपने ही गले में डालने लगे। परन्तु अब ऋषि दयानन्द की कृपा से स्त्रियों को पुनः यज्ञोपवीत और वेदादि शास्त्र के अध्ययन करने का अधिकार प्राप्त हो गया है। फलतः लाखों आर्य भाई और बहिनें 'त्रिसूत्र' पहनने लगे हैं। कोई भी आर्यपुरुष छः तारों का जनेऊ नहीं पहिनता। हाँ, जो स्त्रियों की उन्नति तथा शिक्षा के विरोधी हैं, वे छः तार का जनेऊ अवश्य पहिनते हैं। रही यह बात कि जितनी प्रतिज्ञा की बातें हैं उन्हें वैसे ही याद कर लिया जाय, खामखाँ गले में तारों का वन्धन क्यों डाला जाय ? भाई ! यह तो वह बात हुई कि पुलिस के सिपाही को उसके कर्त्तव्य सम्बन्धी सभी बात सिखा दी जाँय, परन्तु उसे पहिनने की वर्दी और चपरास न दी जाय। वर्दी और चपरास के बन्धन से सिपाही का फ़ायदा ही क्या है ? मैं पूछता हूँ कि सिपाही के चपरास और वर्दी न पहिनने पर पब्लिक के आदमी

में और उसमें क्या अन्तर रहेगा ? और यह जाना भी कैसे जायगा, कि यह सिपाही है ? लोग उसका रौब भी किस तरह मानेंगे ? पता चला, जिस तरह सिपाही को कर्त्तव्य सम्बन्धी बातें याद रखना जरूरी हैं, उसी तरह वर्दी और चपरास भी पहिनना जरूरी है। यही दृष्टान्त जनेऊ पर भी लागू होता है। जहाँ द्विजों को कर्त्तव्य सम्बन्धी प्रतिज्ञायें याद रखना जरूरी है, वहाँ द्विजत्व का चिह्न यज्ञोपवीत भी धारण करना जरूरी है।

कमल—अच्छा, लोग इसे कान पर क्यों चढ़ाते हैं ?

विमल—मल मूत्र त्याग करते समय कान पर चढ़ा लेते हैं।

कमल—यह क्यों ?

विमल—इससे एक लाभ रहता है, वह यह कि जब तक कान पर जनेऊ चढ़ा रहता है, तब तक यह बात याद बनी रहती है कि मुझे हाथ मुँह आदि शुद्ध करना हैं। जहाँ हाथ मुँह आदि शुद्ध किया, फिर कान से उतार देते हैं इस दृष्टि से जनेऊ पवित्रता की याद दिलाने का भी एक साधन बन जाता है।

कमल—क्या कान पर जनेऊ चढ़ाना बहुत आवश्यक है ?

विमल—बहुत आवश्यक नहीं, परन्तु यदि कान पर चढ़ा लिया जाय तो कोई हर्ज भी नहीं बल्कि इससे तो शुद्धता की याद बनी रहती है, जैसा कि मैं कह चुका हूँ। हाँ, एक बात है यदि जनेऊ बहुत नीचा हो, तो मूत्र मल आदि में भ्रष्ट होने की सम्भावना रहती हैं। ऐसी अवस्था में तो कान पर चढ़ाना ही आवश्यक है।

कमल—अच्छा, लोग चोटी क्यों रखते हैं और सन्ध्या करते समय लोग उसमें गाँठ क्यों देते हैं ?

विमल—'चोटी' का शब्द ही यह बतला रहा है कि मनुष्य के शरीर में यह स्थान और यह चीज सबसे ऊँची है। जहाँ चोटी रक्खी जाती है उस स्थान को 'ब्रह्म-रन्ध्र' कहते हैं। विद्वानों ने इस स्थान को ब्रह्म का गुप्त कोष कहा है। योग की परिभाषा में इसे 'सत्य' कहते हैं। इसलिए वैदिक सन्ध्या में 'सत्यं पुनातु पुनः शिरसि' आया है। सन्ध्या करते हुए गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके

सर्व प्रथम चोटी में गाँठ देते हैं, इसका अर्थ ही यह है कि उपासक अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ गाँठ देकर ऐसे जोड़ रहा है जैसे कन्या विवाह के समय अपने पति के वरने के अन्तिम चिन्ह के रूप में उस प्रतिज्ञा की अन्तिम पूर्ति को कार्य रूप में करती हुई अपने पल्ले को पति के पल्ले के साथ एक गाँठ द्वारा जोड़ लेती है। यही गाँठ विवाह की प्रतिज्ञाओं का अन्तिम बन्धन है। वास्तव में चोटी धर्म का चिन्ह हैं।

कमल—मुझे तो इसकी संक्षेप में उपयोगिता बता दो कि हिन्दू चोटी इसलिए रखते हैं, तथा और लोग क्यों नहीं रखते ?

विमल—मैं कह चुका हूँ कि यह आर्य लोगों के धर्म का चिन्ह है। चोटी का अर्थ ही शिखर अर्थात् ऊँचा है, वैदिक धर्म ईश्वरीय होने के कारण चोटी का धर्म है। इसलिए चोटी को धर्म-चिन्ह के रूप में रखते हैं। जिनका वेदों का धर्म नहीं है, वह चोटी कैसे रखें ? चोटी के धर्म वाले ही तो चोटी का निशान रखेंगे।

कमल—अच्छा मित्र, अब तो जाता हूँ, कल एक बहुत आवश्यक विषय पर वार्तालाप करूँगा।

—:ॐ:—

नवाँ दिन : प्रातःकाल

वर्णव्यवस्था जन्म से या कर्म से ?

कमल—मित्र, आज यह बताओ, जाति जन्म से या कर्म से ?

विमल—जाति जन्म से है, कर्म से नहीं।

कमल—एक दिन तो तुम कह रहे थे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कर्म से होते हैं, आज जन्म से बता रहे हो।

विमल—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र तो गुण कर्म से ही होते हैं, परन्तु जाति जन्म से होती है।

कमल—इसका क्या मतलब हुआ ? क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति नहीं हैं ?

विमल—नहीं, यह तो वर्ण हैं। जाति तो वह है जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त रहती है, जिसमें परिवर्तन नहीं होता जैसे मनुष्य जाति, पशु जाति। मनुष्य पशु नहीं बन सकता और पशु मनुष्य नहीं बन सकता। जो जिसकी जाति है वही रहेगी।

कमल—तो क्या वर्ण बदल जाता है ?

विमल—वर्ण क्यों नहीं बदलेगा ? वर्ण का तो अर्थ ही स्वीकार किया हुआ है। 'वर्णो स्वीकारः' जब वर्ण गुण कर्मों से स्वीकार किये हैं, तो जैसे गुण-कर्म होंगे वैसा ही वर्ण हो जायेगा।

कमल—तो क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्ण ईश्वर ने नहीं बनाये है ?

विमल—ईश्वर ने तो जातियाँ बनाई हैं। हाँ, मनुष्य समाज को गुण-कर्मानुसार वर्ण बनाने का उपदेश वेद द्वारा भगवान् ने अवश्य दिया है।

कमल—कौन २ से गुण कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण बनते हैं ?

विमल—वेद ने तो शरीर का दृष्टान्त देकर समझाया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रोऽजायत ॥ यजु० ३१।११

अर्थात् समाज रूपी शरीर का ब्राह्मण 'मुख' है क्षत्रिय 'बाहु' है, 'पेट' वैश्य है और 'शूद्र' 'पैर' हैं। इस दृष्टान्त से यह बात निकलती है कि शरीर के अङ्गों में मुख, ज्ञान प्रधान अङ्ग है क्योंकि मुख में कान नाक, आँख, जिह्वा, आदि सारी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। दूसरे सर्दी, वर्षा आदि ऋतुओं में सारा शरीर वस्त्रों से ढक लिया जाता है, परन्तु मुख सदैव खुला रहता है, वह सर्दी, वर्षा, गर्मी आदि ऋतुओं के कष्ट को बराबर सहन करता है। तीसरे, मुख जो भी ग्रहण करता है, वह अपने पास नहीं रखता, दूसरे को दे देता है। इससे सिद्ध होता

है, कि जिस व्यक्ति में ज्ञान, तप और त्याग है, वह 'ब्राह्मण' है। बाहुओं को 'क्षत्रिय' बतलाने का मतलब यह है कि बाहु अर्थात् हाथ बल प्रधान होते हैं, जब कोई शरीर पर आक्रमण होता है, तो हाथ सबसे पहले शरीर की रक्षा करते हैं। अतएव जो न्याय पूर्वक अपने बल से प्रजा की रक्षा करे वह क्षत्रिय है। पेट को वैश्य कहने का मतलब यह है, पेट सारा भोजन अपने अन्दर एकत्र करता है और फिर उसका ठीक २ पाचन करके प्रत्येक अङ्ग को यथायोग्य हिस्सा देता है। अत: जो धन को एकत्र करके मनुष्य समाज में यथोचित नियमानुसार वितरण करता है, वह वैश्य है। पैरों को 'शूद्र' इसलिए कहा है कि---पैर प्रथम तो सारे शरीर का बोझ उठाये हुए हैं, दूसरे परिश्रम करके, सिर, पेट हाथ आदि 'अङ्गों' को उसी स्थान पर पहुँचा देते हैं, जहाँ जाना है। उनके पास 'ज्ञान' 'बल' और 'धन' तो है नहीं, जो उससे कार्य कर सकें। उनके पास परिश्रम करने की शक्ति है इससे वे समाज रूपी शरीर की सेवा करते हैं। इससे निष्कर्ष यह निकला जो सेवा प्रधान हैं, 'शूद्र' हैं। ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से वैश्य धन से और 'शूद्र' सेवा से मनुष्य समाज की सेवा करे यही वर्णों का वर्णत्व है।

कमल—मैं तो देखता हूँ ज्ञान, बल, धन; और परिश्रम प्रत्येक मनुष्य में थोड़ा बहुत पाया जाता है। इस दृष्टि से तो प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण वाला है। फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि की व्यवस्था बन कैसे सकती है ?

विमल---यह ठीक है प्रत्येक मनुष्य में चारों वर्णों की योग्यता है, परन्तु जिस मनुष्य में जो चीज मुख्य है उसके आधार पर वर्ण माना जाता है। प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई एक मुख्य बात अवश्य है। कोई धनवान् है, कोई गुणवान् है, कोई बलवान् है, कोई सेवक है। उसी के आधार पर उसका वर्ण है। वेद ने तो बीज रूप से अलंकारिक वर्णन कर दिया है, बुद्धिमानों ने उस अलङ्कार का रहस्य निकाला है।

कमल—जरा स्पष्ट रूप में समझाओ, कौन २ से काम करने वाला कौन २ से वर्ण में आता है ?

विमल—जिसमें शम, दम, तप, पवित्रता, शान्ति, कोमलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता है, वह व्यक्ति 'ब्राह्मण' है। जिसमें वीरता, तेज धैर्य, दक्षता, युद्ध से न भागने का स्वभाव तथा दान शीलता और न्यायकारी ईश्वर की तरह न्याय करने का भाव है वह 'क्षत्रिय' है। जो कृषि, गोरक्षा, दान और वाणिज्य-व्यवसाय में निपुण है वह 'वैश्य' है और जो केवल अपने शरीर से सेवा करने में निपुण है, वह 'शूद्र' है।

कमल—यदि वर्णों को जन्म से मानें तो क्या आपत्ति है ? करोड़ों लोग वर्ण जन्म से मानते हैं।

विमल—जो लोग जन्म से वर्ण मानते हैं, उनके अनुसार भी वर्ण कर्म से ही सिद्ध होता है। क्योंकि उनके मत में भी ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों को 'द्विज' माना जाता है। शूद्र को एकज माना जाता है। द्विज का अर्थ है जिसके दो जन्म हों। 'द्वाभ्यां जायते इति द्विजः' संसार में जिनके भी दो जन्म होते हैं, वे 'द्विज' कहलाते हैं, जैसे दाँत, या पक्षी। दांत 'द्विज' क्यों कहलाते हैं ? इस-लिए कि इनके दो जन्म होते हैं। बच्चे के दूध के दाँत टूट जाते हैं दुबारा उनका फिर जन्म होता है। पक्षी 'द्विज' इसलिए कहाते हैं कि उनके भी दो जन्म होते हैं। पहले तो अण्डे का जंन्म होता है। फिर अण्डे से पक्षी का जन्म होता है। अब सोचना यह है कि यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज हैं तो दूसरा जन्म इनका कौनसा है ? माता-पिता के यहाँ जन्म से तो सभी 'एकज' अर्थात् एक जन्म वाले हैं फिर 'द्विज' अर्थात् दो जन्म वाले कहाँ से बने ? उत्तर मिलता है, माता-पिता के बाद आचार्य द्वारा जो जन्म मिलता है, उससे द्विज बने। आचार्य ने योग्यता अनुसार उनको वर्ण प्रदान किया है। वास्तव में प्राचीन काल में वर्ण के बनाने की यही व्यवस्था थी। सभी अपने पुत्रों को गुरुकुल में भेज देते थे। बाद में पढ़ लिखकर जैसी उनमें

योग्यता होती थी, उसी अनुसार आचार्य उन्हें वर्ण की उपाधि दे देता था।

कमल—क्या ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मण और शूद्र का लड़का शूद्र नहीं होता ?

विमल—यह कोई विशेष आवश्यक नहीं कि ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मण और शूद्र का लड़का शूद्र ही हो। जैसे कि यह आवश्यक नहीं डाक्टर का लड़का डाक्टर या मास्टर का लड़का मास्टर और वकील का लड़का वकील हो। क्योंकि जब पिता जैसी लड़के में योग्यता नहीं होगी तो वह अपने पिता के पद पर पहुँच कैसे सकेगा ?

कमल—मैं तो यह समझता हूँ, जैसे गधे से गधा और घोड़े से घोड़ा आम से आम और सेव से सेव उत्पन्न होता है वैसे ही ब्राह्मण से ब्राह्मण और शूद्र से शूद्र उत्पन्न होता है।

विमल—मैं पहले कह चुका हूँ कि गधा, घोड़ा आदि जातियाँ हैं। जाति से जाति उत्पन्न होती है। परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि तो वर्ण हैं वह तो कर्मानुसार बदलते ही रहते हैं। जातियाँ कभी नहीं बदलतीं। गधे घोड़े नहीं बन सकते। जो हैं, वही रहेंगे।

कमल—मेरे विचार में तो वर्ण भी नहीं बदलते। भगवान् ने जो जिसका वर्ण बना दिया है वही रहता है।

विमल—वह बात खूब कही कि वर्ण नहीं बदलता है! अच्छा यह तो बताओ यदि वर्ण नहीं बदलता तो कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय मुसलमान या ईसाई कैसे बन जाता है ? इस भारत के आठ करोड़ मुसलमानों में ८० फीसदी ऐसे हैं जो हिन्दुओं से मुसलमान बने हैं और इनमें चारों वर्ण के लोग मौजूद हैं, यह कैसे बदल गये ? अगर वर्ण भगवान् के बनाये हुए होते तो ये लोग कभी बदल सकते थे ? कदापि नहीं। जो चीज भगवान् की बनाई हुई होती है उसमें परिवर्तन होता ही नहीं। देखो भगवान् का बनाया हुआ आम कभी सेव बन सकता है ? भगवान् का बनाया हुआ शेर कभी हाथी बन सकता है ? दुनियाँ की किसी चीज को लो जो भी भगवान् की बनाई हुई है वह अपरि-

वर्तनशील है। यदि भगवान् का बनाया हुआ ब्राह्मण होता तो ब्राह्मण ही रहता और मुसलमान मुसलमान ही रहता। परन्तु ऐसा नहीं होता गुण-कर्म के बदल जाने से न तो ब्राह्मण ब्राह्मण रहता है और न मुसलमान मुसलमान रहता है।

कमल—मित्र, ब्राह्मण तो ब्राह्मण ही रहता है, चाहे वह भले ही मुसलमान या ईसाई हो जाय। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि वह मुसलमान या ईसाई होने पर उस काम का नहीं रहता जिस काम का रहना चाहिए। जैसे लड्डू के नाली में गिर जाने पर लड्डू तो लड्डू रहता है पर वह खाने के काम का नहीं रहता।

विमल—वाह, तुमने क्या अच्छी तर्क की है, मुसलमान और ईसाई होने पर भी ब्राह्मण ही रहते हैं! अच्छा अगर यह बात है, तो फिर उसे ब्राह्मण ही क्यों नहीं कहते हो, मुसलमान या ईसाई क्यों कहते हो? अथवा 'मुसलमान 'ब्राह्मण' या 'ईसाई ब्राह्मण' क्यों नहीं कहते हो? लड्डू की भी खूब मिसाल दी! यह तो बताओ नाली में गिर जाने पर लड्डू तो काम का नहीं रहता परन्तु किसी पिता का पुत्र नाली में गिर पड़े तो वह पुत्र भी पिता के काम का रहता है, या नही? किसी की गाय या भैंस नाली में गिर पड़े तो वह भी काम की रहती है या नहीं! अच्छा, और लो यदि तुम्हारी यह घड़ी ही नाली में गिर पड़े तो फिर यह तुम्हारे काम की रहेगी या नहीं? यह तो ठीक है नाली में गिर जाने पर लड्डू लड्डू ही रहता है। क्योंकि जिसकी जैसी शक्ल बनी हुई है वह तो रहेगी ही। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि हर एक चीज नाली में गिर जाने से काम की नहीं रहती। लड्डू खाने के काम का नही रहता, परन्तु रुपया गिर जाने पर सदा काम का रहता है। लड्डू का उदाहरण वर्णों पर नहीं घटता जातियों पर घटता है। जैसे नाली में गिर जाने पर लड्डू लड्डू ही रहेगा, जलेबी नहीं बन सकता, वैसे ही नाली में गिर जाने पर मनुष्य, मनुष्य ही रहेगा गधा, घोड़ा नहीं बन सकता। जो जिसकी आकृति बनी हुई है, वह कैसे बदल सकती है? जाति और 'वर्ण' में

यही तो अन्तर है कि जाति 'आकृति से जानी जाती है और वर्ण गुण कर्मों से जाने जाते हैं।

कमल—तो क्या वर्ण शक्ल से नहीं जाने जाते ?

विमल—कभी नहीं, वर्ण गुण-कर्मों से जाने जाते हैं। यदि शक्ल से जान जाते, तो फिर किसी से पूछने की क्या जरूरत थी कि 'तुम्हारा वर्ण क्या है ?' तुम ब्राह्मण हो या क्षत्रिय हो ? यही तो एक बात है जो प्रमाणित करती है, कि वर्ण जन्म से नहीं, गुण कर्म से हैं। यदि ईश्वर ने जन्म से वर्ण बनाये होते तो उसकी पहिचान के लिये उनमें कुछ न कुछ भेद अवश्य करता। जितनी ईश्वर की बनाई चीजें हैं, उनकी पहिचान के लिए सबमें आकृति भेद पाया जाता है। एक लाइन में हाथी, घोड़ा, ऊँट, भैंस, हिरन, सूअर, तोता, कबूतर आदि जानवरों को खड़ा कर दो, बच्चा भी उनकी सूरतों को देखकर बता देगा, 'यह गाय है' 'यह घोड़ा है' 'यह हाथी है।' एक जगह सेव, सन्तरा, आम, अमरूद, अनार आदि फल रखदो। प्रत्येक मनुष्य उनकी शक्ल को देखकर बतला देगा कि यह आम है, यह अनार है, यह सन्तरा है। परन्तु यदि चारों वर्णों के दो हजार मनुष्यों को एक लाइन में खड़ा करदो, अपरिचित मनुष्य उन्हें कभी न बता सकेगा यह कौन-कौन वर्ण के आदमी हैं।

कमल—क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, रङ्ग-रूप से बिल्कुल नहीं पहिचाने जाते ? मैंने बड़े-बड़े विद्वानों से सुना है, वर्ण ईश्वर के बनाये हुए हैं।

विमल—फिर वही बात ! मैं कह चुका हूँ, वर्ण कर्म से होते हैं, जन्म और रङ्ग-रूप से नहीं। यदि रङ्ग-रूप से होते तो उसकी पहिचान के लिए ब्राह्मण का रङ्ग सफेद होता, क्षत्रिय का लाल होता वैश्य का काला होता। परन्तु ऐसा नहीं है। काश्मीर के भङ्गी और मद्रास के ब्राह्मण का मुकाबिला करके देखलो। भङ्गी गोरा और खूबसूरत मिलेगा, ब्राह्मण तवे से भी ज्यादा काला मिलेगा। व्यङ्ग में

लोग कहते हैं, कि एक दफा काले तवे और मद्रास के ब्राह्मण में मुक-दमा चल गया ब्राह्मण कहता था मैं ज्यादा काला हूँ और तवा कहता था मैं ज्यादा काला हूँ। आखिर जज ने फैसला ब्राह्मण के हक में ही दिया। देखो, क्वेटा और बिहार के भूकम्प में सैकड़ों छोटे २ बच्चे मलवे के नीचे दबे हुए निकले उन बच्चों में सभी वर्णों के बच्चे थे। उनके माँ बाप, सगे सम्बन्धियों का कुछ पता नहीं चला। बताओ वे बच्चे किस वर्ण में गिने जायेंगे ? अगर रूप रंग और शक्ल सूरत के आधार पर वर्ण होता तो गाय भैंस के बच्चों की तरह वे पहिचान लिये जाते वा नहीं ? तुमने बड़ें-बड़े विद्वानों से सुना होगा, मैं कब कहता हूँ कि नहीं सुना होगा। सुनने में तो सभी बातें आती हैं, परन्तु ठीक वही होती हैं जो दो और दो चार की तरह सत्य होती हैं। देखो, ईश्वर यदि जन्म से वर्ण बनाता तो और कुछ भेद न भी करता मगर इतना तो अवश्य ही कर देता कि ब्राह्मण का शरीर ८ फुट का, क्षत्रिय, का ६ फुट का, वैश्य का ४ फुट का और शूद्र का तीन फुट का बना देता ताकि पहिचानने में सुविधा हो जाती, या फिर शरीर के बोझ में ही कमीबेशी कर देता। ब्राह्मण का शरीर ४ मन का, क्षत्रिय का ३ मन का, वैश्य का २ मन, और शूद्र का १ मन का बना देता ताकि लोग वर्णों का भेद जान तो लेते। परन्तु उसे तो मनुष्य की उन्नति के लिए गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था बनाने का उपदेश देना था, वह उन चीजों में भेद करता ही क्यों ?

कमल—अच्छा, इन ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों में सबसे बड़ा वर्ण कौन सा है ?

विमल—इन वर्णों में न कोई बड़ा हैं और न कोई छोटा है। अपने २ कर्त्तव्य कर्मों में सब बड़े हैं। जैसे शरीर के अङ्गों में, जब विचार विवेक का अवसर आता है उस समय 'शिर' बड़ा है, जब रक्षा करने का समय आता है तब 'हाथ' बड़े हैं जब भोजन को पचाने और शरीर के प्रत्येक अंग को यथायोग्य भोजन का सार पहुँचाने का अवसर आता है तब पेट बड़ा है और जब परिश्रम पूर्वक शरीर के

भार को उठाने और आने-जाने का अवसर होता है, तो पैर बड़े हैं। इसी प्रकार मनुष्य समाज की 'ज्ञान' से सेवा करने का जब समय आता है तो उस समय ब्राह्मण बड़े हैं। 'बल' से सेवा करने का समय आता है तो क्षत्रिय बड़े हैं। 'धन' से सेवा करने का समय आता है तो वैश्य बड़े हैं और शरीर से सेवा करने का समय आता है, तो शूद्र बड़े हैं।

वैसे स्वतन्त्र रूप से वर्णों में एक दूसरे से न कोई बड़ा है और न छोटा है।

कमल—मेरा तो विचार यह था कि वर्णों में ब्राह्मण सबसे बड़े हैं उससे छोटे क्षत्रिय, उससे छोटे वैश्य और उससे छोटे शूद्र हैं ?

विमल—नहीं यह बात नहीं है। स्वतन्त्र रूप से ब्राह्मण ब्राह्मणों में, क्षत्रिय-क्षत्रियों में वैश्य-वैश्यों में और शूद्र-शूद्रों में तो योग्यतानुसार छुटाई-बड़ाई हो सकती हैं, परन्तु स्वतन्त्र रूप से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णों में छुटाई-बड़ाई का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? जैसे दो हलवाई हैं। एक ५) रोज का कारीगर है, दूसरा १०) रोज का कारीगर है। अब इन दोनों में तो छुटाई-बड़ाई मानी जा सकती है कि एक घटिया कारीगर है, दूसरा बढ़िया कारीगर है। परन्तु कोई व्यक्ति कहने लगे कि हलवाई से दर्जी बड़ा है क्योंकि पन्द्रह रुपये रोज का कारीगर है भला यह क्या बात हुई ? हलवाई और दर्जी में तुलना क्या है हलवाई अपने क्षेत्र में बड़ा है दर्जी अपनें क्षेत्र में बड़ा है। अपने २ कर्त्तव्य कर्मों में दोनों ही बड़े हैं। हाँ, दर्जी दर्जी में योग्यता की दृष्टि से छोटा-बड़ापन अवश्य माना जा सकता है। ठीक इसी प्रकार योग्यतानुसार एक वर्ण के दो व्यक्तियों में छोटा बड़ापन हो सकता है परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में छोटे-बड़े का क्या सम्बन्ध है, जबकि उन सबके गुण, कर्म और क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं ? वहाँ सभी वर्ण अपने २ कर्त्तव्य पालन में बड़े हैं।

कमल—क्या 'वर्ण व्यवस्था' दूसरे देशों में भी पाई जाती है ?

विमल—संसार के समस्त देशों में गुण कर्मानुसार वर्ण

व्यवस्था है। यह और वात है कि वर्णों के नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र न होकर 'मिश्नरी' (Missionry) 'मिलिटरी' (Military) 'मर्चेन्ट्स' (Merchants) और मिनियल्स (Menials) रख लिये गये हैं। यह श्रम-विभाग अथवा 'कर्म विभाग' (Division of labour) का सिद्धान्त सारे संसार में अन्तर्व्याप्त है। इसी का नाम वर्ण-व्यवस्था है।

कमल—मित्र, अव मैं समझ गया, आपकी वड़ी कृपा हुई। अच्छा यह तो वताओ कि नमस्ते कहाँ से चली ?

विमल—इस विषय को कल समझाऊँगा।

—*—

दसवाँ दिन : प्रातःकाल

नमस्ते कहाँ से चली ?

कमल—मित्र, यह नमस्ते कहाँ से चली और इसका अर्थ क्या है ?

विमल—सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत पर्यन्त सव मनुष्य परस्पर में नमस्ते ही करते थे। उनके पश्चात् जव अनेक मतमतान्तर और अनेक मजहव दुनियाँ में फैले, तो उन सवने अलग २ शब्द नियत किये। किसी ने 'गुड मार्निङ्ग' 'गुड नाइट' गुडवाई किसी ने 'अस्लाम अलैकुल' 'वालेकम सलाम' 'आदाब अर्ज' आदि २ अनेक शब्द विधर्मियों और विदेशियों ने कल्पित कर लिए। हिन्दुओं में भी मत पन्थ वालों ने अनेक शब्द कल्पित किये। जै शिव, जै हरी, जय गोविन्द जय राधेश्याम, जैरामजी की, जै कृष्णजी को, प्रणाम, जुहार आदि अनेक प्रयोग जारी किये। महाभारत के पहिले भू-मण्डल पर आर्य लोगों का अखण्ड राज्य था। लोग वैदिक धर्मी थे परस्पर में नमस्ते ही किया करते थे। अव ऋषि दयानन्द की कृपा से लोग प्राचीन वैदिक सिद्धान्त को पुनः समझने लग गये हैं और परस्पर में नमस्ते

रने लगे हैं। तुमने जो यह पूछा है कि नमस्ते का क्या अर्थ है, सो
मस्ते का अर्थ है—'मैं तुम्हारा मान्य करता हूँ, आदर करता हूँ।'

कमल—क्या वेदों में नमस्ते करना लिखा है ? और जैरामजी
, जै श्री कृष्ण की करने में नुकसान ही क्या है ?

विमल—वेदों में ही क्या वाल्मीकि रामायण, महाभारत,
पनिषद्, गीता आदि समस्त ग्रन्थों में नमस्ते ही लिखा हुआ मिलता
। कहीं भी जैरामजी की, जै कृष्णजी की, जय शिव की आदि २
खा हुआ नहीं मिलता। राम और कृष्ण स्वयं नमस्ते करते थे, क्योंकि
सब वैदिक-धर्मी थे। देखो, मित्र ! अगर तुमसे कोई यह पूछे कि
म और कृष्ण के उत्पन्न होने के पहिले लोग क्या करते थे तो इसका
तर क्या दे सकते हो ? राम को उत्पन्न हुए लगभग १० लाख वर्ष
र और कृष्ण को उत्पन्न हुए लगभग ५ हजार वर्ष हुए। सृष्टि तो
ससे पहले की है। सृष्टि को उत्पन्न हुए तो करीब दो अरब वर्ष
ए हैं। मैं तुमसे कह चुका हूँ, यह सब साम्प्रदायिक लोगों की कल्प-
यें है। तुम्हारा यह कहना कि जैरामजी की, जै कृष्णजी की कहने
नुकसान क्या है ? नुकसान एक नहीं अनेक हैं। प्रथम तो लोगों में
म्प्रदायिक भावना जाग्रत होती है। दूसरे इन प्रयोगों में परस्पर के
म्मान की कोई भावना नहीं। मानव समाज में तो कोई उम्र में
सी से बड़ा है, कोई उम्र में छोटा है और कोई उम्र में बराबर।
ब परस्पर में एक दूसरे से मिलना हो तो एक दूसरे के प्रति आदर
र सम्मान का भाव प्रकट करना मनुष्यता और सभ्यता का चिन्ह
। ऐसा न करके जैरामजी की, जय कृष्णजी की, या जय शिव की
हना शोभास्पद प्रतीत नहीं होता। फर्ज करो तुम्हें अपनी नानी,
मी या बुआ, फूफा, के दर्शन हुए और उस समय उन सबसे तुमने
यरामजी की' या 'जय कृष्णजी की' कहा, तो ऐसा कहने में तुमने
के सम्मान में क्या शब्द कहे ? क्योंकि जयरामजी की बोलने में राम
जय और जय श्रीकृष्णजी बोलने में कृष्ण की जय हुई। उनके आदर
र सम्मान में तो कुछ न हुआ। 'नमस्ते' कहने से यह बात निकली

'मैं तुम्हारा मान करता हूँ।' 'मैं तुम्हारा आदर करता हूँ।' आदर ह
एक का करना चाहिए छोटों को छोटा जैसा, बड़ों का बड़ा जैसा
बच्चे का भी आदर है, और बड़े का भी आदर है, माता-पिता क
भी आदर है, पुत्र-पुत्री का भी आदर है।

कमल—राम की जय और कृष्ण की जय बोलने में राम औ
कृष्ण का नाम तो जवान पर आता है ?

विमल—नाम तो आता है पर क्या ये जरूरी है कि ए
दूसरे के सम्मान या अदब के समय भी जयरामजी की और जयकृष्
जी की कहा जाय ? क्या हर समय हर एक शब्द का बोलना उचि
होता है ? समय पर राम को और कृष्ण की जय बोलना भी अच्छ
प्रतीत हो सकता है। जहाँ राम और कृष्ण का चरित्र वर्णन किय
जा रहा हो, वहाँ कंस और रावण के मुकाबिले पर राम-कृष्ण की ज
बोलना अत्यन्त सुन्दर और शोभायमान प्रतीत होता है।

कमल—क्या अच्छे शब्द हर समय नहीं बोले जा सकते हैं ?

विमल—चाहे कितने ही सुन्दर शब्द हों, वे समय पर ह
अच्छे मालूम देते हैं। देखो ! 'राम नाम सत्य है' कितना सुन्दर वाक
है। परन्तु हर समय अच्छा मालूम नहीं देता। यदि हर समय अच्छ
मालूम दे तो जरा विवाह के अवसर पर इसे बोलकर देखो फिर पत
चले कि यह वाक्य कितना भयङ्कर है। इस वाक्य के बोलने में कितन
बुराइयाँ और गालियाँ पल्ले पड़ती हैं, जरा अजमा कर कभी देख
तो सही।

कमल—क्या प्रत्येक को नमस्ते करना चाहिए ? बेटा बा
को नमस्ते करे तो ठीक भी है, परन्तु बाप बेटे को नमस्ते करे, म
बेटी को नमस्ते करे, छोटा बड़े को, बड़ा छोटे को, नीच ऊँच को
ऊंच नीच को, भला यह क्या बात हुई ?

विमल—अच्छा यह बताओ, कि एक मनुष्य को अपनी मात
से प्रेम करना चाहिए या नहीं ?

कमल—हाँ, करना चाहिए।

विमल—अपनी बहिन से भी प्रेम करना चाहिए या नहीं ?

कमल—हाँ, करना चाहिए।

विमल—अपनी पुत्री से भी प्रेम करना चाहिए या नहीं ?

कमल—हाँ, करना चाहिए।

विमल—अपनी पत्नी से भी प्रेम करना चाहिए या नहीं ?

कमल—हाँ, करना चाहिए।

विमल—अब मैं पूछता हूँ, सबसे ही प्रेम करना चाहिए, यह क्या बात हुई ? माता से भी प्रेम, बहिन से भी प्रेम, पुत्री से भी प्रेम, पत्नी से भी प्रेम, पिता, पुत्र और भाई से भी प्रेम। सबसे प्रेम ही प्रेम ! सबके लिए एक ही शब्द। भला यह कहाँ की सभ्यता है कि प्रत्येक से प्रेम करें ?

कमल—पत्नी, पुत्र, माँ, मित्र, बेटी आदि से प्रेम करने में भावनायें तो अलग-अलग हैं ?

विमल—इसी प्रकार नमस्ते करने की भावनायें अलग २ हैं। जैसे माता-पिता से प्रेम करते हैं तो श्रद्धा प्रकट करते हैं, भाई-बहिन से प्रेम करते हैं तो स्नेह प्रकट करते हैं, पत्नी से प्रेम करते समय 'प्रणय' की भावना प्रकट करते हैं, व भगवान् से प्रेम करते हैं तो भक्ति प्रकट करते हैं। इसी प्रकार माता-पिता से नमस्ते करते हैं तो आदर प्रकट करते हैं। पुत्र-पुत्री से नमस्ते करते हैं तो आशीष या आशीर्वाद देते हैं। बराबर वालों से नमस्ते करते हैं तो प्रेम प्रकट करते हैं। बड़ों का आदर, बराबर वालों से प्रेम, छोटों पर दया यह सारी भावनायें 'नमस्ते' शब्द में मौजूद हैं। परन्तु इन समस्त भावनाओं की मन्शा एक ही है-प्रत्येक का आदर, प्रत्येक का सत्कार जैसे श्रद्धा, स्नेह, प्रणय आदि शब्द प्रेम के ही दूसरे रूप हैं, इसी प्रकार आदर, आशीर्वाद प्रेम आदि भी नमस्ते के दूसरे रूप हैं।

कमल—मित्र, आपने यह शङ्का तो निवारण कर दी। अब यह बतलाइये कि मनुष्य को माँस खाना चाहिए या नहीं ?

विमल—इस विषय पर कल विवेचन करूँगा, अब तो देर हो रही है।

मांस खाना चाहिए या नहीं ?

—×—

कमल—क्या मनुष्यों को माँस खाना चाहिए ?

विमल—नहीं ।

कमल—क्यों ?

विमल—इसलिए कि माँस विना प्राणियों को पीड़ा दिए प्राप्त नहीं होता और अपने स्वार्थ के लिए किसी को अकारण पीड़ा देना मनुष्य का धर्म नहीं है ।

कमल—इस दृष्टि से तो किसी को शाक, फल आदि भी न खाना चाहिए, क्योंकि उनमें भी जीव हैं, उनको भी पीड़ा पहुँचती है । जब वनस्पति में भी जीव हैं, तो उनको भी दुःख पहुँचेगा ही ?

विमल—तुम्हारा प्रश्न तो यह था कि माँस खाना चाहिए या नहीं ! मैंने उत्तर दे दिया कि नहीं खाना चाहिए । यहाँ यह प्रश्न नहीं है कि वृक्ष और वनस्पति में जीव है या नहीं ? और अगर यही बात हो कि जिसमें जीव होता है उसमें माँस होता है, तो साबित करो, वृक्षों और शाक फलों में माँस कौनसा है, जिसे न खाना चाहिए । सुनो ! फलों और सब्जियों में 'रस' होता है, रक्त और माँस नहीं होता । क्योंकि कोई नहीं कहता, आम का माँस खाओ, नीबू का माँस खाओ, सेव सन्तरे का माँस खाओ । सब यही कहते हैं, सन्तरे का रस लो, आम का रस लो । । 'रस' कहीं से और किसी का लो, चाहे सन्तरे का चाहे गन्ने का । 'रस' सेवन करने में कोई दोष नहीं । दोष तो खून और माँस के खाने में है । जहाँ-जहाँ खून और माँस का सम्बन्ध है, वहाँ प्राणी को दुःख होता है । जहाँ 'रस' है, वहाँ दुःख का कोई

सम्बन्ध नहीं है। किसी भी प्राणी का 'रस' निकालने पर उसे कोई दु:ख नहीं होता। जैसे 'गोरस' अर्थात् गाय का दूध, उसके निकालने में गाय को क्या दु:ख है ? यदि गाय के थन 'गोरस' अर्थात् दूध से भर रहे हों और न दुहा जाय तो देखा गया है गाय रंभाने लगती हैं, इसलिए कि दूध दुह लिया जाय। परन्तु जहाँ गाय या किसी जानवर का रक्त माँस निकाला जाता है वहाँ उसे दु:ख होता है।

कमल—यदि फलों और सब्जियों में मांस नहीं है तो उनमें जो गूदा है वह क्या है ? वही तो मांस है ?

विमल—अगर फलों और सब्जियों का गूदा ही माँस है, तब तो हलवाई के रसगुल्ले और गुलाबजामुन को भी माँस कहा जा सकता है। क्योंकि गूदा तो उसमें भी होता ही है ! परन्तु रसगुल्ले को कौन माँस कहेगा ? माँस वस्तुत: वही है, जहाँ रक्त है। जहाँ रक्त नहीं, वहाँ माँस कैसा ? वृक्षों और फल फूलों में रस है, रक्त नहीं। जब रक्त ही नहीं है तो माँस कहाँ से आयेगा ? शरीर की धातुओं में सबसे पहली धातु 'रस' से रक्त बनता है और रक्त से माँस बनता है और माँस से अन्य धातुयें उत्पन्न होती हैं। आज जो भोजन किया जायेगा, उसका पचकर पहिले रस बनेगा। उस रस का फिर रक्त बनेगा और फिर माँस बनेगा। माँस तीसरी 'स्टेज' है। जब कुदरत ने प्राणी के शरीर में रस का माँस बना दिया फिर किसी प्राणी के माँस को खाकर 'रस' बनाना और फिर माँस बनाना सृष्टि क्रम के विरुद्ध भी है।

कमल—तो फिर अण्डे खाने में तो शायद कोई भी दोष न होगा, क्योंकि अण्डे में तो माँस नहीं है, शायद 'रस' ही है ?

विमल—अण्डा रज वीर्य के संयोग का पिण्ड है। उस पिण्ड से वही प्राणी उत्पन्न होते हैं जो रक्त माँस वाले हैं। किसी भी रक्त माँस वाले प्राणी की नींव को नष्ट करना क्या मनुष्य का धर्म है, सो भी स्वार्थ पूर्ति के लिए ? हर्गिज नहीं।

कमल—मैं तो देखता हूँ कि दुनियाँ के थोड़े लोगों को छोड़कर

सब माँस ही खाते हैं। इससे पता चलता है कि माँस खाना कोई बुराई की बात नहीं। कुछ ऐसा भी पता चला है, कुदरत ने मनुष्य को माँस भोजी ही बनाया है।

विमल—यह कोई युक्ति नहीं है कि जिस काम को अधिक लोग करते हैं वह काम अच्छा ही होता है। संसार में झूठ बोलने वाले अधिक हैं, सत्य बोलने वाले कम तो क्या झूठ बोलना अच्छी चीज है ? दुनियाँ में पापी अधिक, पुण्यात्मा कम हैं, तो क्या पापी अच्छे कहे जायेंगे ? संसार में घास-फूँस अधिक फल वाले वृक्ष उससे कम, चन्दन आदि के उससे भी कम। मिडिल वाले अधिक, एन्ट्रेन्स वाले उससे भी कम, बी० ए० वाले उससे भी कम और एम० ए० वाले उससे भी कम। तो क्या एम० ए० पास कम होने के कारण बुरे कहे जायेंगे ! संसार में अच्छे और सच्चे लोग बहुत कम होते हैं। बुराई फैलते हुए देर नहीं लगती, भलाई के लिए कोशिशें करनी पड़ती हैं। कपड़े पर मैल बिना परिश्रम के ही लग जाता है। परन्तु धोने में परिश्रम करना पड़ता है। मनुष्यों को ईश्वर ने माँस भोजी नहीं बनाया, ये आदत मनुष्य ने अपने में डाल ली है। क्या संखिया अफीम जैसी चीजें खाने के योग्य हैं ? परन्तु मनुष्य इन चीजों के भो आदी देखे जाते हैं।

कमल—इसका क्या सबूत कि मनुष्य माँस भोजी नहीं हैं ?

विमल—यह तो मनुष्य के शरीर की बनावट से ही जाहिर है। प्रथम तो मनुष्य के वैसे नाखून और दाँत नहीं हैं जैसे माँसाहारी प्राणियों के हैं। मनुष्य माँस को काट छांट कर, बनाकर, घी मिर्च और मसाले मिलाकर पकाता है और अपनी जवान और दाँतों के अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है। माँसाहारी प्राणियों के नाखून अन्य प्राणियों के मारने-फाड़ने के अनुकूल हैं और उनकी जबान कच्चे माँस का स्वाद लेने के अनुकूल है, मनुष्य की नहीं। दूसरे माँसाहारी जितने भी प्राणी हैं उन्हें पसीना नहीं आता, मनुष्य को पसीना आता है। तीसरे माँसाहारी समस्त प्राणी पानी चप-चप कर पीते हैं

नुष्य घूंट २ आँखें
ोल होती हैं, परन्तु मनुष्य की आँखें 'बादाम' जैसी चपटी हैं। एक
गह मैंने पढ़ा है, जितने मांसाहारी प्राणी हैं ये सन्तानोत्पादन की
क्रिया में परस्पर जुड़ जाते हैं। बिल्ली, कुत्ता, शेर, भेड़िया आदि
बको ऐसा देखा गया है। ऐसी बहुत सी युक्तियाँ दी जा सकती हैं
जनसे प्रकट हैं कि मनुष्य मांसाहारी प्राणियों में नहीं है।

कमल—माँसाहारी वीर होते है। माँस में बड़ी शक्ति होती
ै, कुछ लोगों का ऐसा ख्याल है ?

विमल—माँसाहारी अधिकांश में बेरहम और खूँख्वार हो
कते है, वीर नहीं। वीरता और चीज है, और बेरहमी और चीज।
ाँ, तुम यह कह सकते हो कि माँस खाने वाले लाखों आदमी इति-
ास में वीर हुए हैं, परन्तु वह मांस का गुण नहीं था और न है। वह
सल में शिक्षा और संगति का गुण है। मांस खाने से ही वीरता आती
ो तो संसार के अधिकांश लोग मांस खाते हैं सारे के सारे वीर ही
दिखाई देते। भारत में ईसाई मुसलमान और हिन्दू सभी मांस खाते
ैं, फिर भी तेज तर्रार व मारकाट का माद्दा जैसा मुसलमानों में है
उतना भारत की अन्य जातियों में नहीं। वीर असल में वह है, जो
ेश और जाति के हितार्थ निस्वार्थ भाव से अन्याय का अन्त करने के
लिए मैदान में डट जाय, चाहे प्राण ही भले चले जांय, परन्तु पीछे
ो कदम कभी न रक्खे। किसी के घर में आग लगा दी, किसी को
ूट लिया, किसी पर धोखे से वार कर दिया, किसी को छुरा घुसेड़
दिया किसी की स्त्री भगाली—क्या इसका नाम वीरता है ? बहुतेरे
ुण्डे इस प्रकार का कृत्य करते देखे जाते हैं, क्या वह वीर हैं ? हर्गिज
नहीं। वे पापी और अत्याचारी हैं।

कमल—सुना जाता है मांस खाने से बल आता है। शेर, भेड़िये
चीते आदि जानवर कितने बलवान होते हैं ? वे मांस ही खाते हैं।
ेर हाथी तक को मार लेता है। इससे पता चलता है मांस में
बहुत बल है।

विमल—क्या मांस न खाने वाले जानवर बलवान् नही हैं ? गाय, घोड़ा, सांड़ आदि जानवर क्या कम बलवान् हैं ? संसार भर की मशीनों की शक्ति का परिमाण घोड़ों की शक्ति से ही तो लगाया जाता है। सूअर इतना बलवान होता है कि सामने पड़ने पर शेर के भी दांत खट्टे कर देता है। दो शेरों के मध्य में एक सुअर पानी पी सकता है, परन्तु दो सुअरों के मध्य में एक शेर पानी नहीं पी सकता। शेर हाथी से ज्यादा बलवान् नहीं है। कभी २ जंगली मतवाला हाथी जब जंगल में घूमता है, सारे अन्य पशु डर भागते हैं। शेर हाथी पर काबू अपने दाँतों और पंजों से पा लेता है, ताकत से नहीं। देखो दो आदमी हों, एक शरीर में बहुत बलवान् हो, दूसरा शरीर में कमजोर। परन्तु कमजोर मनुष्य के पास भाला, बर्छी, पिस्तौल या बन्दूक हो तो वह बलवान् पर काबू पा लेगा और उसे मार भी डालेगा। क्यों ? इसलिए कि उसके पास शस्त्र की ताकत है। यदि कहीं शेर की तरह हाथी पर पैने दांत और नाखून होते और उसकी आँख छोटी न होती, तो संसार में हाथी किसी प्राणी को न रहने देता। हाथी, ऊंट, भैंस, भैंसा आदि जानवर जो माँस नहीं खाते बड़े बलवान् हैं। वे लाचार यदि हो जाते हैं तो शस्त्रों के अभाव में ही हो जाते हैं।

तुम बल की बात क्या पूछते हो, बल तो सोना चाँदी लोहा तांबा आदि धातुओं की एक-एक रत्ती में भी मौजूद है वह मनों मांस में नहीं है। वह-वह औषधियाँ और वनस्पतियाँ मौजूद हैं जिनकी एक-एक मात्रा में अत्यन्त गर्मी और शक्ति मौजूद है। मांस में क्या शक्ति है ?

कमल—जिन देशों में अनाज पैदा नहीं होता वहाँ के मनुष्य तो मांस पर ही गुजारा करते हैं। आइसलैण्ड अथवा उत्तरी ध्रुव के प्रदेशों में सुना जाता है मांस के ऊपर ही लोगों का जीवन निर्भर है। उनका तो मांस स्वाभाविक भोजन है।

विमल—अगर उन देशों के निवासियों का स्वाभाविक भोजन

माँस हो तो वे मनुष्य न होंगे, या होंगे भी तो मनुष्य की आकृति से भिन्न होंगे। उनके दांत और नाखून भी मांस को चीरने और फाड़ने के अनुकूल ही होंगे। यदि हमारे जैसे ही वहाँ के नर नारी हैं तो माँसाहारी कैसे ? क्योंकि हमारे दांत नाखून, माँस खाने योग्य ईश्वर ने नहीं बनाये हैं। हाँ, उन लोगों ने मांस खाने की आदत डाल ली होगी जहाँ मनुष्य पहुंच सकता है, वहाँ पर हर एक चीज पहुँच सकती है। यदि कहा जाय, वहाँ अनाज उत्पन्न नहीं किया जा सकता और वहाँ की पृथ्वी भी इस योग्य नहीं जो मानव जीवन की आवश्यक वस्तुएँ सम्पादित कर सके तो वहाँ मानव का बसना ही व्यर्थ है। वास्तव में मांसाहार की पुष्टि के सम्बन्ध में सब दलीलें थोथी और व्यर्थ हैं।

कमल—संसार में आर्थिक प्रश्न भी तो है, जहाँ अनाज कम होता है वहाँ मछली आदि बहुतायत से होती हैं। वहाँ के गरीब आद-मियों का गुजारा मछली आदि जानवरों के माँस से होता है। यदि मांस न मिले तो संसार की आर्थिक समस्या कितनी खराब हो जाये ?

विमल—संसार के किसी भी देश को देखो, जब भी प्रश्न उठता है, रोटी का प्रश्न उठता है। आज भी सारे संसार में रोटी का ही प्रश्न और समस्या है। दाल, शाक, चटनी, मुरब्बे, रायते कढ़ी और माँस का प्रश्न नहीं है। क्योंकि वह सब चीजें रोटी से लगाकर खाने की हैं, जायके और लज्जत की हैं, जबान को खुश करने की हैं, पेट भरने और शक्ति प्रदान करने की नहीं हैं। 'रोटी' मुख्य है और सब चीजें गौण हैं। शरीर का मुख्य आधार रोटी है, और यही संसार का प्रश्न है। आर्थिक प्रश्न सदैव रोटी से सम्बन्धित है, और रहेगा भी।

कमल—अच्छा, माँस खाने में विशेष हर्ज ही क्या है ?

विमल—माँसाहारी ईश्वर भक्त नहीं हो सकता, क्योंकि ताम-सिक भोजन से विचार भी तामसिक ही होंगे, सात्विक नहीं। संसार में जो भी भगवान् के सच्चे भक्त बने वे या तो माँस खाते ही नहीं थे

यदि खाते भी थे तो बाद में खाना उन्होंने छोड़ दिया। तब उन्हें अन्तरात्मा की ज्योति का पता चला। यह ठीक है जो मांस नहीं खाते वह भी ईश्वर भक्त नहीं दीखते आडम्बरी दीखते हैं। उन लोगों में भी, चोरी, दगा, फरेब, झूठ बोलना आदि दुर्गुण मौजूद हैं। पर जो आदमी पापों से रहित और निरामिष भोजी हैं वही ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है। अतएव मांस खाना अत्यन्त निषिद्ध है।

कमल—अच्छा मित्र, यह तो बताओ कि क्या ईश्वर से ही समस्त सृष्टि बनी है ?

विमल—यह कल बताऊँगा।

बारहवाँ दिन : प्रातःकाल

क्या समस्त सृष्टि ईश्वर से बनी है ?

कमल—क्या यह सारा संसार ईश्वर का ही रूप है ?

विमल—नहीं, यह संसार प्रकृति का रूप है ! ईश्वर तो रूप से रहित है।

कमल—बड़े २ बुद्धिमान् और दार्शनिक विद्वान् यही कहते हैं कि सारा संसार ईश्वर से ही बना है। ईश्वर से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से अन्न, औषधियाँ तथा अनेक प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए हैं।

विमल—यह बात गलत है, ईश्वर सृष्टि का उत्पत्ति कर्त्ता है स्वयं कार्य नहीं है। सृष्टि उत्पत्ति के तीन ही कारण हैं और तीनों ही पदार्थ अनादि हैं—ईश्वर, जीव, प्रकृति। यह तीनों पदार्थ अनादि हैं।

ईश्वर निमित्त कारण है, प्रकृति उपादान कारण है और काल, दिशा आदि साधारण कारण हैं, क्योंकि सृष्टि के समस्त कार्यों में यह सामान्य हैं। निमित्त कारण वह है जिसके बनाने से कोई चीज बने न बनाने से न बने। उपादान कारण वह है जिसके होने से कोई चीज बने, न होने से न बने। जैसे सुनार ने जेवर बनाया। अब सुनार इसमें कर्त्ता यानी निमित्त कारण हुआ और सोना उपादान कारण हुआ। सुनार के बनाने से जेवर बने, न बनाने से न बनते। इसी तरह सोने के होने से जेवर बने न होने से न बनते। देखो ! यदि ईश्वर से आकाश बनता तो आकाश का 'शब्द' गुण है। ईश्वर का गुण शब्द है नहीं, तो आकाश में शब्द कहाँ से आया ? कारण के गुण कार्य में अवश्य आते हैं। सोने से जेवर बनायें तो सोने के गुण जेवर में अवश्य आयेंगे। जब ईश्वर में ही शब्द नहीं है, आकाश में कहाँ से आ जायगा ? अभाव से भाव भी नहीं होता। अतएव सिद्ध है, ईश्वर से आकाश नहीं बना। इसी प्रकार आकाश से वायु नहीं बनी। क्योंकि वायु का धर्म स्पर्श है और आकाश में स्पर्श नहीं है तो स्पर्श गुण वायु में कहाँ से आ गया ? वायु से अग्नि नहीं बनी, क्योंकि अग्नि का गुण रूप है और रूप वायु में है नहीं, फिर अग्नि में कहाँ से आ गया ? इस प्रकार समस्त तत्वों को समझ लो। यह सब तत्व, सत, रज, तम वाली मूल प्रकृति से ही बने हैं और इन्हें निमित्त कारण परमात्मा ने ही बनाया है।

कमल—परमात्मा सृष्टि बनाने में जब प्रकृति का सहारा लेता है, तो प्रकृति का मुहताज हुआ—क्योंकि वह बिना प्रकृति के संसार नहीं बना सकता ?

विमल—परमात्मा प्रकृति का सहारा नहीं लेता, बल्कि प्रकृति को ही संसार के रूप में बिना किसी का सहारा लिए कर देता है। अपना कार्य करने में किसी साधन का मुहताज नहीं है। प्रकृति साधन नहीं बल्कि 'कर्म' है जिस पर परमात्मा की क्रिया का फल गिरता है। जैसे मोहन ने सोहन को मारा, तो मोहन कर्त्ता है, सोहन 'कर्म' है

और मारना क्रिया है। कोई कहने लगे कि मोहन सोहन को मारने में सोहन का मुहताज है। मैं पूछता हूँ, यह कहना क्या अक्लमन्दी की बात है ? क्या बिना मोहन के सोहन को मार देना कहना ठीक बन भी सकता था ? यदि मैं कहूँ, मैंने कमल को पाँच रुपये दिये हैं तो कोई मुझसे कहने लगे, तुम कमल को रुपये देने में रुपयों के मुहताज हो। भला यह क्या वात हुई ? मैं रुपये देने में रुपयों का मुहताज कैसा ? शायद तुम्हारा मतलब यही है, कि मरने वाला न हो और ईश्वर उसे मार दे। खाने वाला न हो और ईश्वर उसे खिलादे, रोने वाला न हो और ईश्वर रुलादे। प्रकृति न हो और प्राकृतिक जगत् वना दे। भला इसे पागलपन के सिवाय और क्या कहा जायेगा ?

कमल—मैं तो सुनता हूँ, सृष्टि बनने के पूर्व ईश्वर ही ईश्वर था, और कोई पदार्थ नहीं था। उसने अपनी इच्छा से सृष्टि बनाई है।

विमल—अच्छा, ईश्वर ने सृष्टि क्यों वनाई ? अपने लिये या अन्य के लिए ? यदि कहो; अपने लिए तो मालूम हुआ, सृष्टि की जरूरत ईश्वर को थी। जिसमें जरूरत है उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि जरूरत का होना ही अपूर्ण होने का सबूत है। यदि कहो जीवों के लिये बनाई तो ईश्वर के साथ जीव भी मानने पड़ेंगे। फिर ईश्वर ही ईश्वर था यह बात गलत हो जायगी।

कमल—उसने अपनी लीला दिखाने के लिए सृष्टि को रचा है।

विमल—उसने अपनी लीला किसे दिखाई ?

कमल—अपने आपको, अपनी लीला दिखाता है ?

विमल—अपने आपको अपनी लीला क्यों दिखाता है।

कमल—अपने आनन्द के लिये लीला दिखाता है।

विमल—तो सृष्टि रूप लीला दिखाने के पहले उसमें वह आनन्द था या नहीं। यदि था, तो लीला दिखाने से आनन्द क्या हुआ ? यदि नहीं था तो उसमें लीला के आनन्द की कमी तो स्वतः ही सिद्ध होगई और जब लीला दिखाई तो सृष्टि रूप लीला के आनन्द

की परमात्मा में वृद्धि हुई। जिसमें कमी और वृद्धि का दोष होता है, उस पदार्थ के गुण अनादि अनन्त नहीं होते। और जब गुण ही अनादि अनन्त नहीं हैं तो उनका गुणी जो ईश्वर है, अनादि अनन्त कैसे हो सकता है ?

कमल—अच्छा, मैं यह मान लूं कि लीला दिखाना उसका स्वभाव है।

विमल—ऐसे मानने में राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, सुख, दुःख, जन्म, मरण, अन्याय, चोरी, जारी, हिंसा, व्यभिचार आदि गुण, अवगुण सब ईश्वर की लीला के ही धर्म मानने पड़ेंगे, क्योंकि सृष्टि रूपी लीला में यह सारी बातें हैं ! फिर संसार में पाप, पुण्य, दुराचार, सदाचार, धर्म-अधर्म कोई पदार्थ न रहेगा। सब परमात्मा के स्वभाव के अङ्ग बन जायेंगे। फिर तो वेद, शास्त्र, यम, नियम आदि साधन सब व्यर्थ हो जायेंगे। मानव जीवन का उद्देश्य भी कोई न रहेगा। किसकी प्राप्ति के लिए घोर तपस्यायें की जायें और कौन उन्हें करे, जब कि ईश्वर ने अपने आपको अपने स्वभाव से ही लीला दिखाई है। फिर कौन पापी और कौन पुण्यात्मा ? कौन सा कर्म और कौन सा कर्म फल ? सब व्यर्थ !!

कमल—अच्छा आपके सिद्धान्त से परमात्मा ने सृष्टि क्यों बनाई ?

विमल—जीवों के कल्याण के लिए परमात्मा सृष्टि की रचना किया करता है। वह न्यायी और दयालु है। उसके न्याय और दया का प्रकाशन सृष्टि-उत्पत्ति द्वारा ही होता है उसका अपना कोई प्रयोजन नहीं, दया और न्याय करना उसका स्वभाव है।

कमल—जब परमात्मा ने जीवों के कल्याण के लिये सृष्टि बनाई है, तो उसमें दुःख सुख और भलाई बुराई क्यों है ?

विमल—सृष्टि में जो भी भलाई बुराई मालूम देती है और सुख दुःख मालूम देता है वह वास्तव में जीवों के अपने कर्मों का परिणाम है। जीव अपनी अज्ञानतावश सृष्टि में दुःख उठाता है।

अन्यथा न सृष्टि में कोई बुराई है और न कोई दुःख है। जीव अपनी अल्पज्ञता के कारण विपरीत कर्म करके दुःख उठाते हैं और परमात्मा के न्यायानुसार अनेक योनियाँ धारण करते हैं। परमात्मा दुःख किसी को नहीं देता। दुःख का कारण अज्ञान है, वास्तविकता का न समझना है।

कमल—क्या जीव परमात्मा ने नहीं बनाये ?

विमल—जीव अनादि है।

कमल—जब जीव और प्रकृति ईश्वर ने नहीं बनाये तो उसने इन पर अधिकार क्यों किया ?

विमल—यह प्रश्न ऐसा ही है, जैसे कोई पाठशाला में विद्यार्थियों को देखकर कहे कि जब मास्टर ने इन विद्यार्थियों को पैदा नहीं किया तो इन पर अपना अधिकार क्यों रखता है? जब प्रकृति अज्ञ, जीव अल्पज्ञ और परमात्मा सर्वज्ञ है, तो दोनों वस्तुओं पर सर्वज्ञ का प्रभाव स्वभाव से रहेगा। जैसे पाठशाला में विद्यार्थियों पर मास्टर का नियन्त्रण होना विद्यार्थियों की उन्नति का कारण है वैसे ही सृष्टि रूप पाठशाला में जीवों का ईश्वराधीन रहना जीवों की उन्नति का कारण है। परमात्मा रूपी मास्टर के वेद ज्ञान द्वारा जीव लौकिक और परलौकिक उन्नति सम्पादित करते हैं।

कमल—यदि यह मान लें कि जीवों को भी परमात्मा ने बनाया है, तो क्या आपत्ति आती है।

विमल—ऐसा मानने पर जीव कर्म करने में स्वतन्त्र न रहेगा दूसरे भले बुरे कर्मों की जिम्मेदारी ईश्वर पर ही रहेगी। जीव पाप का भागी न माना जायगा, क्योंकि जीव को परमात्मा ने बनाया और भले बुरे कर्म करने की उसमें योग्यता रखी, तभी भले बुरे कर्म किये तो उसका अपना दोष क्या हुआ? जीव को बनाने के पहिले उसमें यह योग्यता रखता कि बुरे कर्म वह कर ही न सकता। अतएव जीव अनादि है और कर्म करने में स्वतन्त्र है और परमात्मा की व्यवस्था से कर्म फल भोगने में परतन्त्र है।

कमल—कुछ लोग कहते हैं, जीव ब्रह्म का ही अंश है ?

विमल—अंश, अंशी का भाव सावयव यानी साकार और अनित्य पदार्थों में होता है। जीव ब्रह्म दोनों तत्व अनादि हैं।

कमल—कुछ कहते हैं, जीव ब्रह्म से ही बना है और अन्त में ब्रह्म में ही लय हो जायेगा।

विमल—ऐसा मानने पर जीव अनादि और सनातन नहीं रहता। हमेशा कार्य कारण में लय होता है, जैसे मिट्टी रूप कारण में घड़ा रूपी कार्य लय हो जाता है। जीव ब्रह्म का कार्य नहीं है। वह स्वतन्त्र और नित्य है। जो नित्य है वह अपनी सत्ता खोकर किसी में लय कैसे हो जायगा ?

कमल—जीव है तो ब्रह्म ही, अपने को अज्ञानता से जीव समझता है ?

विमल—इससे तो यह सिद्ध होता है, कि ब्रह्म में भी अज्ञान है। जब ब्रह्म ही अज्ञानता के वश जीव बना है तो फिर ज्ञान किससे प्राप्त करेगा ? ब्रह्म से तो नहीं कर सकता, क्योंकि ब्रह्म तो अज्ञान के काबू में आया हुआ है।

कमल—क्या ब्रह्म से जीव नहीं बना ? और क्या अन्त में जीव ब्रह्म न बनेगा ?

विमल—जो बनता है, वह ब्रह्म नहीं होता, ब्रह्म तो बे बनी वस्तु है, इसी तरह जीव भी नहीं बनता तभी तो दोनों तत्व नित्य हैं।

कमल—कुछ लोग कहते हैं, यह संसार मिथ्या है ब्रह्म ही सत्य है, माया को अनिवर्चनीय कहते हैं। क्योंकि माया तीन काल में एक रस रहती नहीं, इसलिए सत् उसे कह नहीं सकते। और असत् इसलिए नहीं कहते कि उसका संसार में काम दिखाई देता है।

विमल—संसार न सत् है न असत् है बल्कि अनित्य है, अर्थात् बदलने वाला है जो लोग माया को अनिवर्चनीय कहते हैं उनसे पूछना चाहिए कि माया को किसी प्रमाण से मानते हो या बिना प्रमाण के ही मानते हो ? यदि प्रमाण से मानते हो, तब तो माया प्रमेय होगई

क्योंकि प्रमाता ने प्रमाण से जान लिया, उसका निर्वचन हो गया। यदि कहो बिना प्रमाण के मानते हैं तो 'माया है' यह जाना कैसे ? इसलिए माया अर्थात् प्रकृति के कार्य अनित्य हैं और प्रकृति नित्य है।

कमल—कुछ कहते है यह संसार भ्रम है, वास्तव में इसकी सत्ता नहीं है, जैसे रस्सी का साँप दिखाई देता है, सीप की चाँदी दिखाई देती है; इसी प्रकार ब्रह्म में माया की प्रतीति होती है, वास्तव में माया नहीं है। सीप में चाँदी नहीं, रस्सी में साँप नहीं, तो भी भ्रम हो जाता है, इसी प्रकार ब्रह्म में ही माया का भ्रम हो रहा है।

विमल—यह भ्रम हो किसे रहा है, जब ब्रह्म के सिवाय और कोई चीज ही नहीं ? क्या ब्रह्म में ब्रह्म को ही ब्रह्म का भ्रम हो रहा है ! क्योंकि भ्रम किसी में किसी का किसी को होता है। दूसरे भ्रम समान वस्तुओं में होता है। जैसे रस्सी में साँप का भ्रम हो सकता है घड़े में नहीं, सीप में चाँदी का भ्रम हो सकता है गुलाब जामुन का नहीं। जब ब्रह्म चैतन्य और जगत् जड़ है तो असमान होने से भ्रम कैसे होगा ? ब्रह्म निराकार जगत् साकार, ब्रह्म नित्य जगत् अनित्य, ब्रह्म सर्वज्ञ जगत् अज्ञ, फिर भ्रम होगा कैसे ?

कमल—क्या ब्रह्म के अलावा और वस्तुएँ भी हो सकती हैं ?

विमल—यदि और वस्तुएँ न हों तो ब्रह्म कहा किसे जाय ब्रह्म का अर्थ है, बड़ा, जब छोटा ही नहीं तो बड़ा कैसा ? जब कड़वा ही नहीं तो मीठा कैसा ? दूसरे ब्रह्म आत्मा है, जिसका अर्थ है व्यापक। यदि व्याप्य न हो तो व्यापक होगा कैसे ?

कमल—अच्छा मित्र, इस विषय को अब यहीं समाप्त करता हूँ। आपकी युक्तियों से यही समझ में आता है कि ब्रह्म, जीव और प्रकृति के नित्य मानने में ही सारी समस्यायें हल होती हैं और कोई 'वाद' इस सृष्टि का सम्यक् समाधान नही कर सकता। आपकी बड़ी कृपा हुई जो आपने इतने दिनों तक वार्तालाप करके मेरे समस्त संशय निवारण कर दिये। मैं आपका उपकार कभी न भूलूंगा।

ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम' वैदिक प्रेस, वृन्दावन मार्ग, मथुरा।

॥ ओ३म् ॥
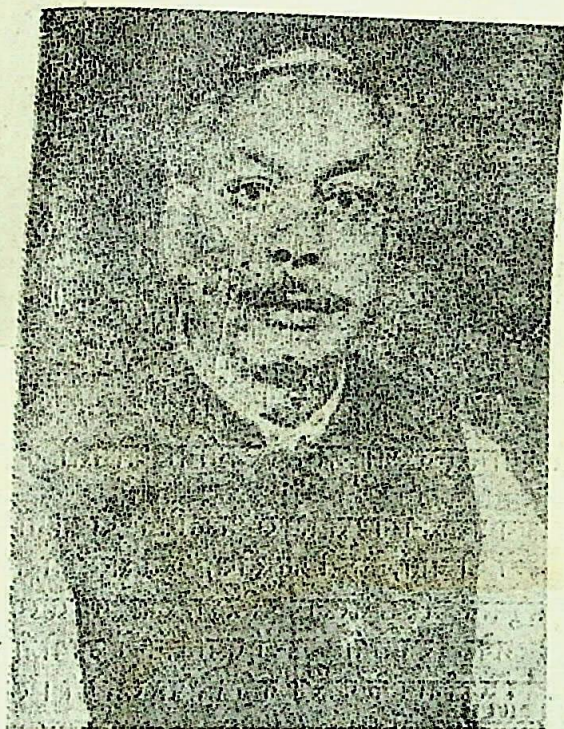
श्रीयुत् लल्लूमल जी

(श्री पं० सिद्धगोपाल जी के सहोदर भ्राता

एवं उनके एक मात्र उत्तराधिकारी)

॥ ओ३म् ॥

श्री श्यामसुन्दरजी आर्य स्वर्गीया श्रीमती नेमवतीजी

सत्य प्रकाशन मथुरा द्वारा प्रकाशित दो बहनों की बातें, दो मित्रों की बातें, सखी की सीख, शुद्ध सत्य नारायण कथा, शुद्ध हनुमान चरित्र, संस्कार चन्द्रिका, उपासना रहस्य, सुमगंली आदि अनेक उपयोगी पुस्तकों तथा अनेकों उपयोगी ट्रैक्टों का प्रकाशन अर्थाभाव के कारण नहीं हो पा रहा था। स्वनामधन्य श्री श्यामसुन्दर जी आर्य (अध्यक्ष—सत्य प्रकाशन, मथुरा) ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती नेमवती जी की भावनाओं के अनुरूप इन ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ कागज की व्यवस्था में सहयोग देकर एक आदर्श प्रस्तुत किया है। श्री आर्य जी सत्य प्रकाशन 'तपोभूमि' मासिक तथा आश्रम-परिवार को सुविकसित वृक्ष के रूप में देखने के लिये सर्वात्मना यत्नशील हैं। तदर्थ कोटिशः धन्यवाद !